

‘णिगंगंय पावयणं सच्चं’  
( निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है। )

# आत्म-वैभव

श्रीमती रतन चोरडिया

आत्म तत्त्व के जान लेने पर संसार की सभी वस्तुएँ तुच्छ व हेय लगने लग जाती हैं। अतः हे आत्मन्! तू शरीर से भिन्न एक आत्मा की अनुभूति कर। जिस दिन तू अपनी शुद्ध चैतन्य मय आत्मा के दर्शन कर लेगा, उस दिन तुझे सच्चा सुख व सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। अतः इस जगत के सभी जंजालों को छोड़कर मात्र अपने आपको पहचानने में लग जा। वहीं अपने समय, शक्ति व श्रम का उपयोग कर। शुद्ध आत्मभावों में रमण करना, आत्मभावों में लीन रहना ही सच्चा सुख है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आचरियाणं,  
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं

प्रकाशक

**कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर**

चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 ( राज. )

फोन: 0291-2621454 ( R ), फैक्स: 2435471, मोबाइल: 94141-34606

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealth.com

सहयोग राशि 25/-

- 'क्या माँ के गर्भ में वातानुकूल कमरा था?, क्या माँ के गर्भ में सुगन्धित फूलों की महक थी? क्या माँ के गर्भ में मखमल के गद्दे थे?, क्या वहाँ पर एक भी पंखा या खिड़की थी? ओ हो कैसी काल कोठरी में यह जीव सवा नौ महीने औंधा लटक कर वेदना सहता रहा।'
- 'श्वासों में जब रूकावट होने लगेगी, नाड़ियों की गति बदल रही होगी। दृष्टि पथरा जायेगी। रक्षण करने वाला कोई नहीं होगा, तब तू क्या करेगा?'
- 'इस नश्वर शरीर में अनेक रोगों का आक्रमण होगा। स्नेही संबंधियों के सारे उपचार बेकार हो जायेंगे एवं बड़े-बड़े डिग्रीधारी डॉक्टर, वैद्य आदि उपचार करते-करते निष्फल हो जायेंगे। निकट के साथी-संबंधी, रोते हुये चेहरे से तुझे देख-देख कर आंसू निकालेंगे, उस समय तेरा कौन होगा?'
- 'मान चाहे मत मान, तीन दुश्मन तेरे पीछे पड़े हुए हैं- रोग, बुढ़ापा और मृत्यु। इन तीनों में से किसी एक के झपाटे में भी तू आ गया तो तेरा सारा अभिमान चूर-चूर हो जायेगा। तेरी सारी मेहनत व कमाई धरी रह जायेगी। अन्तर दिल से सोच, उस समय तेरा कौन होगा?'
- 'मृत्यु निश्चित है। काल गति की किसी को खबर नहीं। यदि मृत्यु का स्मरण सदैव बना रहता है तो हम जीवन में पाप नहीं करते। पूर्व में बांधे पुण्य से अभी लीला लहरें करता है। पुण्य खत्म होगा, उस समय तुझे जबर्दस्त धक्का लगेगा। सभी सुखों को छोड़कर मरना निश्चित है, फिर भी नश्वर पदार्थों के पीछे कितना दौड़ता है। आत्मा के लिये कुछ भी नहीं करता है। अरे जीव! अब भी समझ जायें तो अच्छा है।'

एकेन्द्रिय जीवों की विराधना से भविष्य में स्पर्शन्द्रिय, काय बल प्राण, आयुष्य एवं श्वासोच्छ्वास बल प्राण कमजोर मिलेंगे। शरीर साथ नहीं देगा। सहन शक्ति कमजोर होगी। एकेन्द्रिय जीव की द्रव्य विराधना से पूर्णतः बचना तो कठिन है, परन्तु यतनापूर्वक जीवन जीने से उसमें कमी तो हो सकती है। भाव प्राणों की विराधना, द्रव्य प्राणों की विराधना से भी ज्यादा खतरनाक होती है। अतः कम से कम हम भाव विराधना से तो अवश्य बचने का सम्यक् पुरुषार्थ करें।

“त्याग में पदार्थ छूटता है, वैराग्य में ममत्व टूटता है एवं वीतरागता में आनन्द फूटता है।”

## पुरो वाक्

जीवन के साथ मृत्यु का, सांसारिक सुख के साथ दुःख का एवं संयोग के साथ वियोग का संबंध शाश्वत सत्य है, किन्तु भौतिक सुखों के आकर्षण में आबद्ध मनुष्य शाश्वत सत्य की उपेक्षा करता रहता है। यह मानव जीवन नश्वर है, धन्य-धान्य, जीवन-जायदाद छूटने वाले हैं, घर-परिवार भी अन्तिम रक्षक नहीं है तथापि मनुष्य इन्हीं को अपने सुख का साधन समझकर इनसे ममत्व करता रहता है। ममत्व करना मनुष्य की भूल है। यह सत्य की समझ पर पर्दा डाल देता है।

जब मृत्यु निकट आती है तो विवेकशील मानव को लगता है जीवन व्यर्थ गया। किन्तु कुछ प्राणी मृत्यु के समय सोचने-समझने की क्षमता भी खो देते हैं। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो अचानक ही जीवन समाप्त कर चल देते हैं। वे प्राणी सौभाग्यशाली हैं जो इन्द्रिय, बुद्धि एवं मन के स्वस्थ रहते हुए सत्य को समझकर उसका जीवन में आचरण कर लेते हैं।

श्रीमती रतन चोरडिया ने अपनी पुस्तक “आत्म-वैभव” में आत्मा के गुणों एवं क्षमताओं का दिग्दर्शन कराया है तथा अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु-साध्वी रूप पंच परमेष्ठी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उनकी शरण ग्रहण करने की प्रेरणा की है। इस आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है, उसका वैभव अनूठा है, किन्तु अज्ञानी मनुष्य उसे पहचानने में सक्षम नहीं होता। उसके लिए यदि वह निरन्तर बारह भावनाओं का चिन्तन करें तो उसकी दृष्टि में परिवर्तन सम्भव है। श्रीमती चोरडिया ने अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व आदि भावनाओं का बोध परक सुन्दर चित्रण किया है। यदि कोई इनका नियमित चिन्तन मनन करें तो उसके विचार स्पष्ट एवं आचरण उन्नत हो सकता है। आज मनुष्य बाहर से निर्मल दिखने के प्रयास करता है एवं भीतर से विविध विकारों से ग्रस्त रहता है। उसे अपने को विमल बनाने के लिए आत्मलोचन की आवश्यकता है। वह जिन अठारह पापों का अर्जन करने में लगा हुआ है, उन्हें आत्मलोचन द्वारा दूर करने की आवश्यकता है। लेखिका ने 18 पापों का वर्णन करते हुए उनसे बचने का भाव जागृत करने का प्रयास किया है। पुस्तक में शुभ एवं शुद्ध भावों को अपनाने तथा अशुभ भावों को छोड़ने का संदेश सहज ही मिल जाता है।

लेखिका की भाषा सहज है तथा शैली आत्म-बोध परक एवं हृदय तंत्र को झंकृत करने वाली है। यह पुस्तक केवल मृत्यु के निकट पहुँचे व्यक्तियों के पठन-श्रवण के लिए ही नहीं अपितु दैनिक सामान्य जीवन में भी प्रेरणादायी है। आशा है पाठक इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

-डॉ. धर्मचन्द जैन,  
प्रधान सम्पादक, जिनवाणी

## लेखिका परिचय

आदर्श, गृहिणी, मधुर भाषी, सरस भाषण में निपुण, सरलहृदया, विदूषी लेखिका श्रीमती रतन चोरडिया का जन्म आसोज शुक्ला 3 संवत् 2003 तदनुसार दिनांक 27 सितम्बर, 1946 को जोधपुर में सुश्रावक एवं समाज सेवी श्री सोमचन्द्र जी सर्राफ की धर्मपत्नी श्रीमती मीमकंवर जी की कुक्षि से हुआ। शैशवावस्था से ही आपको नैतिक व धार्मिक संस्कार पैतृक विरासत में प्राप्त हुए। युवावस्था में आपका विवाह जोधपुर के जाने-माने सुसंस्कारित धार्मिक परिवार में स्वर्गीय श्री कल्याणमल जी चोरडिया के सुपुत्र श्री चंचलमल जी चोरडिया के साथ हुआ। श्री चंचलमल जी चोरडिया इंजीनियर होने के साथ प्रभावशाली स्वावलंबी बिना दवा की मौलिक अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों के प्रेरणा स्रोत के रूप में ख्याति प्राप्त चिकित्सक माने जाते हैं।

आपके सबसे बड़े जेठ श्री कनकमल जी चोरडिया मद्रास के निस्पृही श्रावक एवं साहुकार पेट संघ के पूर्व अध्यक्ष के रूप में तथा अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के संरक्षक एवं रत्नवंशीय शासन सेवा समिति के सदस्य के रूप में चिर-परिचित व्यक्तित्व के धनी हैं। आपके दूसरे जेठ श्री प्रसन्नमल जी गादिया चंगलपेट ( तमिलनाडु ) की अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं के सम्मानित पदों पर प्रतिष्ठित हैं। आपके तीसरे जेठ श्री प्रकाशमल जी चोरडिया सी.ए. अखिल भारतीय स्तर पर धार्मिक प्रश्न-मंच कार्यक्रमों के कुशल प्रस्तोता के रूप में विख्यात हैं।

आपके सुपुत्र श्री अशोक जी चोरडिया ( सी.ए. ) श्री अ.भा.श्री जैन रत्न युवक संघ के महासचिव हैं तथा अपने पैतृक व्यवसाय चोरडिया इलेक्ट्रिकल्स का सफलतापूर्वक संचालन कर अपने पिताश्री को अधिकतम समय धार्मिक एवं सामाजिक सेवा कार्यों में प्रदान करने में सहयोग दे रहे हैं। अशोक जी शान्त-स्वभावी, मितभाषी एवं अनेक थोकड़ों के जानकार हैं। नियमित स्वाध्याय, सामायिक करते हुए अनेक व्रत-प्रत्याख्यानों के साथ अपना जीवन यापन करते रहे हैं। आपकी पुत्रवधू श्रीमती काजल जी चोरडिया जयपुर के प्रसिद्ध जवाहरात व्यवसायी एवं विशिष्ट साधक श्री टीकमचन्द्रजी हीरावत की सुपुत्री हैं। काजल जी ने लघुवय में धार्मिक संस्कारों की विद्यमानता से अठाई, ग्यारह एवं मासखमण जैसी बड़ी तपस्या कर अपने दोनों कुलों का गौरव बढ़ाया है। आपकी दोनों सुपुत्रियाँ श्रीमती रीटा मेहता व श्रीमती कविता सालेचा भी धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत सदगृहिणी हैं। आपकी नणद सरल, सेवाभावी स्वर्गीय सज्जन बाईसा मोदी अव्वल दर्जे की निस्पृही, शांत एवं सजग साधिका थीं। नित्य सोलह सामायिक, स्वाध्याय, जप आदि करती थीं एवं चंद्र मास पूर्व ही जिन्होंने संथारा कर मृत्यु को महोत्सव बना दिया। श्रीमती रतनजी ने अपनी नणद सज्जन जी बाईसा की तन-मन-धन से निःस्वार्थ सेवा कर एक आदर्श उपस्थित किया। अंतिम समय में संथारे में भी अभूतपूर्व सहयोग दिया एवं उनकी स्मृति में 'मृत्यु एक महोत्सव' पुस्तक का संपादन कर प्रकाशन कराया। इस प्रकार आपका सम्पूर्ण परिवार धार्मिक संस्कारों से सम्यक् रूपेण समृद्ध है। आपकी धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में उल्लेखनीय सेवाएँ रही हैं। अखिल भारतीय श्री महावीर जैन श्राविका समिति की लगभग बारह वर्षों तक आप महामंत्री रही, तथा अ.भा. श्री जैन रत्न श्राविका संघ की परामर्शदात्री के रूप में आपकी अमूल्य सेवाएँ रही हैं। इस संस्था द्वारा संचालित धार्मिक परीक्षाओं के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित पुस्तक "स्वाध्याय प्रवेशिका" का आपने बड़ी लगन व अथक परिश्रम से संकलन कार्य निष्पन्न किया है। विभिन्न धार्मिक प्रशिक्षण शिविरों के संचालन एवं अध्यापन हेतु आप सदैव अपनी निःशुल्क सेवाएँ प्रदान करने में तत्पर रहती हैं।

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ की आप पिछले 30 वर्षों से अधिक वरिष्ठ स्वाध्यायी के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रही हैं। सन 1995 में आपको पर्युषण पर्वाराधन हेतु हांगकांग जैसे विदेशी राष्ट्र में भेजा गया। जहाँ आपने अपनी योग्यता की प्रभावी छाप अंकित की। स्वाध्याय संघ द्वारा आयोजित प्रचार-प्रसार यात्राओं में भी आपकी सेवाएँ प्राप्त होती रहती हैं। विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक आयोजनों में आप अपने हृदय स्पर्शी चिन्तनशील विचारों से जनमानस को आकर्षित कर लेती हैं। पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों के प्रति सजगता जागृत करने वाली जोधपुर की विख्यात संस्था जैन-ब्रिगेड की महिला शाखा की आप भूतपूर्व अध्यक्ष हैं। आज भी चाहे जैन ब्रिगेड का कोई कार्य हो, चाहे धार्मिक शिविर का कार्य हो सब आपसे परामर्श को महत्त्व देकर कार्य करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में आपने आत्मा का वास्तविक स्वरूप, अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तन, अठारह पापों की आलोचना व सच्चे आत्मिक वैभव को बहुत ही सरल एवं बोधगम्य शब्दों में समझाया है। जो आपकी मन स्थिति का परिचायक होने के साथ ही पाठकों के अन्तर हृदय को झकझोरने वाला है।

-धर्मचन्द्र जैन, रजिस्ट्रार,

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

## जिज्ञासु जीवों के लिये सुन्दर उपहार

जब-जब किसी बीमार व्यक्ति की साता पूछने के लिये मैं जाती, तब वहाँ बैठे व्यक्ति कहते कि आप आये हैं तो इन्हें कुछ ज्ञान की बातें सुनायें, समझायें। बीमार व्यक्ति भी यदि सजग होता है तो वह भी उस समय यहीं चाहता है कि कुछ ज्ञान की बातें सुनने को मिले, जिससे मेरा आर्त्त-रौद्र ध्यान कम हो। अंतिम वेला में व्यक्ति अपने पापों की आलोचना व प्रायश्चित्त करना चाहता है। ऐसी ज्ञान-भरी बातें सुनना चाहता है कि जिससे मन को शांति मिले। उस समय उनकी साता पूछने आने वाले व्यक्तियों को भी वैराग्यप्रद बातें अच्छी लगती हैं। इसलिये अन्तर्मन में एक विचार जगा कि क्यों न अपने संगृहित विचारों को पुस्तक का रूप दे दूँ, जिससे सबको लाभ मिलें।

हम सबके जीवन में कई बार ऐसे नाजुक क्षण आते हैं जब हमारा मन अशांत, चंचल व दुःखी बन जाता है। जिन्दगी के उन क्षणों में यदि अच्छे विचार सुनने व पढ़ने को मिले तो अशांत मन शांत बन जाता है। क्रोध के आवेग में व सहनशीलता के अभाव में कभी-कभी अशांत व्यक्ति आत्म-हत्या जैसा निकृष्ट कर्म भी कर लेता है। मेरा मन जब अशांत व दुःखी होता तब मुझे ऐसे विचार पढ़ने से बड़ी शांति मिलती। जब मुझे शांति मिलती है तो सबको शांति मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

हमारा जीवन एक संग्राम है। इस जगत में हर व्यक्ति को निरन्तर कई समस्याओं से संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्षमय स्थिति में कई बार हम मूर्च्छित होकर दिशा भ्रमित हो जाते हैं। उन क्षणों में हमारा मन बड़ी दुविधा में पड़ जाता है। हम निर्णय नहीं कर पाते कि ऐसी परिस्थिति में हम क्या करें? कभी-कभी यह अनिर्णय की स्थिति इतनी प्रबल हो जाती है कि हम निराशा, कुण्ठा, संशय, अनिश्चय व किंकर्तव्यमूढ़ता के चंगुल में फंसकर शिथिल, रोगी व दुःखी बन जाते हैं। मेरे जीवन में भी कई बार ऐसे विकट क्षण उपस्थित हुए जब मैं निर्णय नहीं कर सकी। ऐसी परिस्थितियाँ आये तब हम क्या करें, किसके पास जायें, किसके सामने जाकर अपना दुःख बाँटे, कैसे दुःखी मन को समझायें, कैसे बोध प्राप्त करें, किससे मार्गदर्शन पायें? जीवन के इन नाजुक क्षणों में अपने मन के बोझ को कुछ हल्का कर सकें। अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकें। ऐसे विचार बार-बार मेरे मन को आन्दोलित करते। उस समय मुझे बार-बार सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परमात्मा की याद आती कि हे प्रभु! इस समय यदि आप हमारे सामने होते तो हम आपके पास आकर अपनी शंकाओं व समस्याओं का समाधान पाते। किंतु हमारा दुर्भाग्य है कि आज जिनेश्वर परमात्मा हमारे सामने नहीं है और न ही ऐसे ज्ञानी गुरु भगवन्त हैं जिनके पास जाकर हम अपने पापों की आलोचना सच्चे दिल से, सरल व शुद्ध हृदय से कर सकें, तथा उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकें। इन बातों को मैंने खूब सोचा, चिंतन व मनन किया, तब सहसा जिनवाणी माँ का ख्याल आया। जिनवाणी जीवन में हताश व निराश व्यक्तियों को जीवन जीने की प्रेरणा देती है। भूले-भटकते इन्सानों के लिये मार्ग-प्रदर्शक का काम करती है। उन नाजुक क्षणों में यदि वह हमारा सिंचन करें तो हमारा मन शांत व जागृत बन सकता है। यह जिनवाणी माता जन्मदात्री माँ से अधिक उपकारी है, शहद से मीठी है, इत्र से अधिक सुगन्धित है। हीरे, पन्ने, माणक, मोती से अधिक कीमती, इसका एक-एक शब्द है। यह दुःखी मन को धैर्य व ढाढस बंधाती है, रोते हुये जीवों को हंसाती है, उनके आंसू पौछती है।

सुन्दर पवित्र जीवन जीने के लिये सम्यक् विचार अत्यन्त आवश्यक हैं। दुःख के क्षणों में यदि सद्विचार हमें नहीं मिलते तो निश्चित रूप से हम भटक जाते हैं। हम अपने ही कलुषित परिणामों से भव-भ्रमण के चक्र को बढ़ा लेते हैं। मेरे जीवन में जब-जब ऐसे क्षण उपस्थित हुये तब मुझे महापुरुषों के जीवन की घटनायें, उनके संस्मरण, महासतियों के जीवन-चरित्र, उनके दुःखमय संघर्षों की कहानियाँ पढ़-पढ़ कर बड़ी शांति मिलती है। मैं

अपने मन को समझाती कि क्यों छोटी-छोटी घटनाओं से निराश होती हो। चन्दनबालाजी, अंजनाजी, सीताजी, द्रोपदी जी आदि सतियों का जीवन कैसे संघर्षों से भरा हुआ था। फिर भी उनका साहस, उनका धैर्य उनकी सहनशीलता, उनकी श्रद्धा व उनका आत्म-विश्वास कैसा अनूठा था और एक तुम हो जो मामूली सी, छोटी-छोटी घटनाओं से विचलित हो जाती हो, रोती हो, बिलखती हो, आंसू निकालती हो। धिक्कार है तुम्हें। हर जीवन में संघर्ष आते हैं, आने ही चाहिये। रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आती ही है। वैसे ही सुख के बाद दुःख व दुःख के बाद सुख तो आता ही है। फूल कांटों के बीच में ही खिलता है। क्या मखमल की शय्या पर कभी फूल खिलता है? जीवन में निखार तो कष्टों, बाधाओं और संकटों में जूझने से ही आता है। ये सारे प्रसंग मुझे जागृत करने के लिये आते हैं। मेरी मोह की नींद उड़ाने के लिये आते हैं।

ज्ञानी और अज्ञानी जन, सुख-दुःख रहित न कोई।

ज्ञानी भोगे धैर्य से, अज्ञानी भोगे रोय।।

हर जीवन में कभी सुख का पलड़ा भारी रहता है व कभी दुःख का। इसमें रोने व घबराने की बात क्या है? ज्ञानी आत्मा समभाव-पूर्वक सुख व दुःख को सहन करते हैं पर अज्ञानी जीव, रो रोकर फिर से नये-नये कर्मा को बांधते रहते हैं। इस तरह दुःखों की परम्परा चालू रहती है, यही तो संसार है। आधि-व्याधि और उपाधि से भरे हुये संसार में जीवों को शांति, समता और प्रसन्नता जिन-वचन ही दे सकते हैं। सारे संघर्षों व सारी समस्याओं का हल जिनवाणी में है। सम्यक् चिंतन व सम्यक् विवेक में हैं। हम अपनी जीवन पोथी को खोलकर आत्मनिरीक्षण के द्वारा मनन व चिंतन कर अपने जीवन को सही दिशा में मोड़कर आत्म-कल्याण के पथ पर आगे से आगे बढ़कर अपनी मंजिल पा सकते हैं।

आज के इस आधुनिक युग में जितना पैसा बढ़ा, उतना भोग बढ़ा। जितना भोग बढ़ा, उतनी ही पाप-प्रवृत्तियाँ बढ़ी। हमने इस दुर्लभ मनुष्य भव को पाकर भी इससे सार नहीं निकाला। शहरों के वातावरण में तो प्रतिदिन बीभत्सता व विषमता बढ़ रही है। शुद्ध आहार व पवित्र जीवन के अभाव में जीवन की सात्विकता नष्ट होती जा रही है। आज हमारे विचारों में भारी परिवर्तन आ गया है। विचारों के बिगड़ने से अनैतिक आचरण बढ़ता जा रहा है। प्रेम, विनय, क्षमा, सहनशीलता, सरलता, निर्भीकता व आत्मीयता आदि सद्गुण प्रायः घटते जा रहे हैं। मन के रोग बढ़ते जा रहे हैं। उन मानसिक रोगों को मिटाने के लिये सद्विचार व सत् साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता है। जिनवाणी ही इन सब समस्याओं को मिटाने में सक्षम है।

हे जिनवाणी देवी! मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार करती हूँ। तू अभीष्ट वस्तु के प्रदान करने में चिंतामणि रत्न के समान है। तेरी कृपा से मुझे भी रत्नत्रय रूप बोधि, आत्मलीनता रूप समाधि, परिणामों की पवित्रता, आत्मस्वरूप का लाभ व मोक्ष सुख की प्राप्ति हो। हम सब ऐसी परम कल्याणकारी जिनवाणी को प्राप्तकर मोक्ष मार्ग के सच्चे पथिक बनें। जल में कमल की तरह संसार में रहते हुये भी तेरते हुये चले जायें। जीवन के हर क्षेत्र में हमारा विवेक जागृत हो। परिस्थितियों से हम विचलित न बनें। जीवन में विषमता का मुकाबला करना सीखें। हमारी अज्ञानता दूर हो। हर क्षण हमारी सजगता बनी रहें। हम व्यर्थ बातों में, गप्पों में, विकथाओं में अपने समय को बर्बाद न करें। कुसंग भयानक जहर है, जिससे हमारे विचार बिगड़ते हैं। हमारे संस्कार बिगड़ते हैं। हमारा व्यवहार बिगड़ता है। हमारी संस्कृति बिगड़ती है। ऐसा साहित्य हम भूलकर भी न पढ़ें। गलत प्रवृत्तियों व गलत साहित्य से आग की तरह बचें। सत्साहित्य को सदैव पढ़ें। तत्त्वों के गूढ़ रहस्यों को समझें। गहराई से उनका चिंतन-मनन करें। सात्विक जीवन जीयें। हम ऐसा साहित्य पढ़ें, जिसे पढ़ने से हमारा संसार का रस कम हों, मोह का नाश हों। विषय व

कषायों से हम छूटते चले जायें, सुसंस्कार हमारे जागृत हों। हमारा जीवन सुन्दर पवित्र व त्यागमय बनता चला जायें। हमारे कदम मोक्ष मार्ग की ओर बढ़ते जायें।

हम अपने भीतर सोये चैतन्य को जगायें। अज्ञान के कपाट जो लगे हुए हैं उन्हें खोलें और देखें कि हमारे इस देह मंदिर में एक ज्योतिर्मय देवता सोया है। हमें उसके दर्शन करना है। प्रत्येक आत्मा में चैतन्य की अखंड ज्योति जल रही है, उस ज्योति के दर्शन हमें करना है।

हे जीव! संसार की समस्त वासनाओं का परित्याग कर। निरन्तर आत्म-भावों में लीन बन। सबको आत्म-तुल्य समझ। धन-पुत्र, स्वजन, शरीरादि में आत्मबुद्धि व्यर्थ है। ममता को हटाये बिना कभी समता आ नहीं सकती। जिसने आसक्ति व ममत्व पर समझपूर्वक काबू पा लिया, वह व्यक्ति कहीं भी रहेगा, कभी भी दुःखी नहीं होगा। इस पुस्तक में यही बताने का प्रयत्न किया है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ? मरकर कहाँ जाऊँगा? क्या करने से मुझे दुःख मिलता है? क्या करने से मैं सुखी बन सकता हूँ? संसार क्या? संसार का स्वरूप क्या? कर्म क्या? बंध क्या? सुख क्या? सुख का स्वरूप क्या? मुमुक्षु जीव में क्या गुण होने चाहिये? उसकी अन्तरदशा व उसका चिन्तन कैसा हो? इस पुस्तक को पढ़कर साधक हर क्षण विचार करे कि आज मैंने अपने लिये क्या किया? मैंने अपनी जिन्दगी के कितने क्षण अपने लिये बिताये व कितने परायों के लिये। उससे मुझे क्या मिला। जो-जो पाप कार्य मैंने किये, उनको करने के पश्चात् मेरा क्या होगा? कोई मेरा नहीं, मैं किसी का नहीं, फिर मैं व्यर्थ कर्मों के भार को क्यों बढ़ा रही हूँ? जब तक मेरा ममत्व नहीं टूटेगा, तब तक यह संसार नहीं छूट सकता। वास्तव में यदि मुझे सुखी बनना है तो अपनी आत्मा का समझ पूर्वक दमन करना चाहिये। परवशता में मैंने बहुत कष्ट सहन किये हैं, पर उससे मेरा कुछ भी भला नहीं हुआ। समझपूर्वक इच्छाओं, वासनाओं व विकारों को जीत कर ही मैं आत्मा पर विजय प्राप्त कर सकती हूँ। राग-द्वेष के प्रसंग उपस्थित होने पर भी जिसके जीवन में समभाव के पुष्प खिलते हैं, वही व्यक्ति सुखी बन सकता है। राग-द्वेष, मोह-अज्ञान भावों से ही हमारे मन की शांति भंग होती है। कौन क्या करता है, कहाँ जाता है, उचित कर रहा है या अनुचित कर रहा है, ऐसा सोचने से हमें क्या मिलेगा? हमारे ही मन के परिणाम बिगड़ते हैं। मैं क्यों ऐसे विचार कर अपनी आत्मा को मलिन बना रही हूँ। मुझे स्वयं को सुधारना है, दूसरों को सुधारना मेरे वश की बात नहीं है। मुझे अपने बारे में सोचना है। अनुकूल व प्रतिकूल कोई भी प्रसंग मेरी शांति भंग न करें। इसका मुझे ध्यान रखना चाहिए।

जब-जब हमें प्रतिकूल व्यक्ति या वस्तु मिले, तब-तब यही सोचना चाहिये कि अभी मेरे अशुभ कर्मों का उदय है। यह तो निमित्त है। मुझे मेरे भावों को संभालना है। मैं अपने ही विचारों से दुःखी बनती हूँ तथा अपने साथ रहने वालों को भी दुःखी बनाती हूँ। मैंने आज तक विनाशी को पाने के लिये ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाई, अविनाशी का तो मुझे भान ही नहीं हुआ। संसार के कार्यों को आज तक किसी ने पूरा किया नहीं, फिर क्यों मैं व्यर्थ परिश्रम कर रही हूँ। यह देह मुझे पूर्व में बंधे कर्मों का क्षय करने के लिये मिली है। पाप क्या है? हम उन पापों की मर्यादा कैसे करें? हमने इन पापों को समझकर त्याग कर लिया अथवा मर्यादा कर ली तो फिर नये कर्मों का बंध नहीं होगा। तथा हमारा मन डाँवाडोल नहीं होगा। व्रत प्रत्याख्यान लेने से हमारी संतोष वृत्ति जाग्रत होती है। जैसे-मैंने परिग्रह की मर्यादा करली तो दूसरों की संपत्ति व ऐश्वर्य देखकर भी कभी मेरा मन ऊँचा-नीचा नहीं होगा, मन में संकल्प-विकल्प नहीं होंगे। उसे पाने की लालसा नहीं जागेगी। मुझे अब अधिक नहीं चाहिये, फिर मैं क्यों इकट्ठा करूँ, क्यों आरम्भ-संभारंभ कर कर्मों का भार अपने माथे चढाऊँ?

जब तक भीतर में ज्ञान की ज्योति नहीं जलती है तब तक हम अपना अन्तर शोधन नहीं कर सकते हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय रूपी लुटेरों ने अन्तर में अपना अड्डा जमा रखा है। इसलिये आत्मा में अनन्त सुख का

भंडार भरा होने पर भी आज उस हम सुख के लिये तरस रहे हैं। रात-दिन सुख को पाने के लिये दौड़ लगा रहे हैं। सच्चे सुख को पाने के लिये प्रस्तुत पुस्तक को पढ़िये, गुनिये व आचरण में उतारिये। ऐसा करने से हम सब परम सुखी बन जायेंगे। इन बातों को मुँह से कहना व बोलना सरल है, पर जीवन-व्यवहार में उतारना बड़ा मुश्किल है। हम बुद्धि द्वारा बहुत कुछ जानते हैं, परन्तु मात्र जानने से इष्ट की उपलब्धि नहीं होती है, उसके लिए अन्तर भावों को जगाना आवश्यक होता है। बुद्धि जब ज्ञान चेतना से जुड़ती है तब प्रज्ञा का रूप धारण करती है। विवेक पूर्वक ज्ञान व सच्ची श्रद्धा ही हमें सही रास्ता बताती है।

सुन्दर भावों से परिपूर्ण छोटीसी इस पुस्तक को आप स्वयं पढ़ें, चिंतन व मनन करें तथा दूसरों को भी पढ़ावे। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक प्रबुद्ध पाठकों को नया चिंतन प्रदान करेगी। ज्ञान के पिपासु जीव इसे पढ़कर अन्तर्मुखी बनकर अपने आत्म-वैभव को प्राप्त करेंगे। 'हाथ कंगन को आरसी क्या।' पुस्तक आपके सामने है। अपने कोमल हाथों में लीजिये, पढ़िये, चिंतन करिये व निज स्वरूप में गाते लगाइये।

मैं आपका बहुत बड़ा अहसान मानूँगी, यदि आप मुझे इस पुस्तक के बारे में अपने सुझावों से अवगत करायेंगे। इसमें जो त्रुटियाँ हैं वह मेरी हैं तथा उपकार ज्ञानी गुरु भगवन्तों का है, जिनवाणी का है। मैं अपने माता-पिता व पति का भी परम उपकार मानती हूँ कि उन्होंने मुझे सुन्दर संस्कार दिये, जिससे मेरे जीवन का विकास हुआ। अपनी समस्त भावनाओं व विचारों को ज्ञानी गुरु भगवन्तों के चरणों में सादर समर्पित करती हुई उनकी चरण-रज अपने मस्तक पर लगाती हूँ। जिन्होंने मुझे स्वाध्याय का संबल प्रदान किया।

-रतन चोरडिया

चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 ( राज. )

॥श्री वीतरागाय नमः ॥

## 1. परमेष्ठी शरण

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमः प्रभुः  
मंगलं स्थूलि भद्राद्या, जैन धर्मोस्तु मंगलं।  
अनन्त चौबीसी जिन नमूँ, सिद्ध अनन्ता क्रोड,  
वर्तमान जिनवर सभी, केवली दो नव क्रोड  
गणधराधिक सब साधुजी, समकित व्रत गुणधार।  
यथा योग्य वन्दन करूँ, जिन आज्ञा अनुसार ॥

( सबसे पहले सुबह उठकर नवकार मंत्र का पाठ शुद्ध बोलकर भावपूर्वक पंच परमेष्ठी भगवान को वन्दन करें। )

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोह सव्व साहूणं, एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम।

हे जीव तू सदैव हर क्षण, हर पल लोकोत्तम निम्न चार शरण को ग्रहण कर।

मुझे मंगलमय लोकोत्तम अरिहंत परमात्मा की सदैव शरण हो।

मुझे मंगलमय लोकोत्तम सिद्ध परमात्मा की सदैव शरण हो।

मुझे मंगलमय लोकोत्तम सद्गुरु भगवन्तों की सदैव शरण हो।

मुझे मंगलमय लोकोत्तम सुधर्म की सदैव शरण हो।

हे आत्मन्! इन चार शरणों को ग्रहण करके तू अपने कर्मों का क्षय कर। ये चार शरण मात्र पथ प्रदर्शक है। मंजिल तक पहुँचने के लिये चलना तुझे ही पड़ेगा। संसार का कोई भी शरण तुझे चार गति के चक्र से मुक्त नहीं करा सकता। जन्म-मरण के चक्र से छूटना है तो संसार की शरण को छोड़ दे।

इस संसार में देव गुरु व धर्म की शरण मुझे मिली है। अतः मैं धन्य हूँ, कृतपुण्य हूँ। भव समुद्र तिरने का मुझे मार्ग मिला, कर्म बंधन से मुक्त होने का मुझे मार्ग मिला। अतः अब मैं अपने सम्पूर्ण पापों व दुष्कृत्यों की आलोचना करके इस अनन्त संसार से पार पहुँच सकती हूँ। ये चार शरण जीवों को दुर्लभ हैं। महान् पुण्यवानी से मिलते हैं। सभी आधि-व्याधि-उपाधि आदि सर्व पीड़ाओं का नाश करने वाले व मोक्ष सुख देने वाले ये चार शरण हैं।

अतः हे आत्मन्! विचार करो। शुद्ध भाव पूर्वक अडिग आस्था और तन्मयता से नवकार महामंत्र का ध्यान करो। यह चौदह पूर्वा का सार है, अद्भुत व चमत्कारी महामंत्र है। इसके ध्यान से आत्म-शक्ति जागृत होती है, भय व बाधाएँ नष्ट होती हैं। शुद्ध अन्तःकरण से इस महामंत्र का उच्चारण करने से तेरे सभी दुःख दूर होंगे।

**प्रभु वीतराग भगवन्! यह प्रार्थना हमारी।**

**हम निजस्वरूप पायें, पायें दशा तुम्हारी।।**

हे प्रभु! मेरे आत्म परिणामों की शुद्धि हो। मुझे समभाव की प्राप्ति हो, मेरे शुभ संकल्पों में वृद्धि हो, कषाय भाव मेरे शांत हो। प्रार्थना, भक्ति, चिंतन-मनन-ध्यान व शुभ संकल्पों से मुझे अपने जीवन को निष्पाप बनाना है।

हे प्रभु! सर्वत्र शांति हो, सभी सुखी हो, विश्व का कल्याण हो, हम किसी के शत्रु न हों, कोई मेरा शत्रु न हो। मैं जब तक जीऊँ सबको साता पहुँचाऊँ, मेरे निमित्त से किसी को किसी तरह का दुःख न हो। दुःख देने के लिये मेरा जन्म नहीं हुआ है। मेरे अन्तःकरण में, मेरे चिंतन में, मेरे आचरण में व मेरे व्यवहार में समता हो। जब-जब मेरे जीवन में कषाय भाव का उदय हो- सम्यक् चिंतन से मैं उन भावों को शमन करूँ। अध्यात्म की किरणों मेरे अणु-अणु में प्रकट हों। यह दुर्लभ मनुष्य जीवन मुझे मिला है, यह व्यर्थ न चला जाये, मेरे जीवन में आध्यात्मिक तेज प्रगट हों।

हे आत्मन्! इस संसार में भटकते-भटकते तूने अनन्तकाल गंवा दिया। अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तन किये, फिर भी तुम्हारे भव परम्परा का, जन्म-मरण का, आधि-व्याधि-उपाधि रूप दुःखों का अन्त नहीं हुआ। संसार का मूल मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व अशुभ योग का सेवन करके अनन्त काल व्यर्थ गंवा दिया। अब इस दुर्लभ मानव भव को प्राप्त करके इसे निष्फल मत कर। इसे भोगों में बर्बाद मत कर। इस भव में महा-दुर्लभ मोक्ष का साधन रूप जो-जो सामग्री व साधन तुझे प्राप्त हुए हैं, उनसे इस जन्म-मरण के फेरे को मिटा कर अपना जीवन सफल कर।

**विश्वास आत्मा की ज्योति है, संशय आत्मा का अंधकार है।**

**विवेक हृदय की सौरभ है, अविवेक मन की गंदगी है।।**

हे प्रभु! अन्तस्तल में विवेक का प्रकाश फैलने पर यह अच्छी तरह समझ में आ गया कि भव से प्राप्त आनन्द जहर है और भाव-स्वभाव अमृत है। मैंने आज तक जहर को अमृत समझकर पिया और उसके नशे में मस्त रही। सांसारिक स्वार्थजन्य प्रलोभनों का नाग बुरी तरह से काटता रहा और परिणामतः मेरे भाव बिगड़ते रहें। संसारी जीवों का प्रेम स्वार्थ से भरा व झूठा है। जब तक हमारे पास धन है, पद हैं, शक्ति है तब तक सभी प्रेम करते हैं, आदर-सत्कार व सम्मान करते हैं परन्तु यदि हमारे पास इनमें से कुछ भी नहीं है तो वे ही स्वजन, मित्र हमारे से दूर रहने की कोशिश करते हैं। अतः हे आत्मन्! सावधान बनो। संसार स्वार्थ से भरा है। संसार के सारे ही संबंध झूठे व स्वार्थ से भरे हुए हैं। उन्हें समझो, जागृत बनो, मोह की नींद उड़ाओ।

कहाँ शांति का मूल है, ढूँढ रहा संसार ।  
कस्तूरी निज नाभि में, मृग ढूँढत है बाहर ॥

संयोगों में सुख खोजना समय और शक्ति का अपव्यय है। पानी में से नवनीत एवं बालू रेत में तेल निकालने के समान है। अतः जीवन में शांति चाहिये तो अपने मन में विकारों से युद्ध करों, बाह्य शत्रुओं से युद्ध करना व्यर्थ है। ज्ञान का प्रकाश ही वास्तव में प्रकाश है। निज आत्मा को पहचानने वाला ही सच्चा सुख व शांति प्राप्त करता है।

हे नाथ! संसार की समस्त ममता बुद्धि को दूर कर। मेरा मन सदाकाल दुःख में, सुख में, शत्रु में, मित्र में, लाभ में, हानि में, संयोग व वियोग में, घर में, वन में सर्वत्र राग-द्वेष की परिणति को छोड़कर सम बन जाये।

हे आत्मन्! पांच पचास साल की छोटी सी जिन्दगी में तू किस-किसके साथ शत्रुता बांध रहा है? शत्रुता से तुझे क्या मिलेगा? कुछ भी नहीं। मात्र अशांति व क्लेश ही तुझे मिलेगा। वीतराग वाणी तुझे बार-बार सावधान कर रही है कि संसार के सारे ही संबंध स्वार्थ से भरे हुए, क्षणिक एवं संयोगी हैं। पूर्वभव का शत्रु कभी इस जन्म का स्नेही व प्रिय बन जाता है और स्नेही कभी शत्रु बन जाता है। इस परिवर्तनशील संसार में तू किसे अपना मित्र व किसे अपना शत्रु मान रहा है। सभी जीव कर्मवश है कर्मों की विचित्रता अपार है। अनन्त भवों में भ्रमण करते समय पूर्व भव की मां कभी बेटा व बेटा कभी मां बनकर पूर्वभव के वैर बदले को चुकाता है। अतः अब समझ! तेरे प्रति शत्रुता रखने वाले का भी तू अशुभ चिंतन मत करना। सज्जन व्यक्तियों को कलह व शत्रुता शोभा नहीं देता। समता भाव रखने में तेरी सज्जनता है।

सारा विश्व एक फिल्म है और कुछ भी नहीं। अतः आत्म लक्ष्यी और आत्म खोजी बनो। जैसे बीज में अनन्त वृक्ष बनने की शक्ति छुपी हुई है, वैसे ही आत्मा में भी अनन्त शक्ति छुपी हुई है। तू मात्र आत्मा है, तेरा कोई नहीं और तू भी किसी का नहीं। सिर काटने वाला शत्रु भी, इतना अपकार नहीं करता, जितना अपकार दुराचरण में आसक्त हमारी अपनी ही आत्मा करती है। संसार में जितना भी दुःख है वह सब स्वरूप के अज्ञान का है। स्वरूप का बोध होने पर किसी प्रकार का दुःख व क्लेश नहीं होता। भाव निद्रा अनादि से है, जगाने वाला कोई हो तो यह जीव जाग सकता है। जो आत्मा अपने आत्मगुणों का विकास करता है, आत्म-ज्योति जगाता है, वह नर से नारायण, बीज से वृक्ष, शव से शिव एवं भक्त से भगवान बनता है।

जब आत्मा से मोह का पर्दा हटता है तभी उसे आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है। अज्ञान व मोह को हटाने में अरिहंत, सिद्ध, साधु व धर्म की शरण निमित्त बनते हैं। अतः हे आत्मन्! अन्तरात्म दशा प्रकट करने के लिये इनकी शरण ग्रहण कर। इनके द्वारा बताई गई शिक्षा को धारण कर। देह से भिन्न आत्मा का बोध कर।

जब तक माला हाथ में, प्रभु का नाम मात्र जिह्वा पर तथा मन मात्र मंदिर में लगी मूर्ति की पूजा, अर्चना में ही लगा रहेगा तब तक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आ सकता। लेकिन जब अरिहंत प्रभु हमारे रोम रोम में, प्रदेश-प्रदेश में व हर श्वास में, व हर प्रवृत्ति में बस जायेंगे, उस दिन हम स्वयं प्रभु मय बन जायेंगे। दुनिया को जीतने वाला वीर होता है, पर अपने आप को जीतने वाला ही महावीर बन सकता है। दुनिया को जीतना सरल है, पर अपने आपको जीतना व पाना बड़ा कठिन है। यदि अपने आपको पाना है तो पंच परमेष्ठी के स्वरूप का चिंतन व मनन करो।

अहो प्रभु! इस लोक में आप ही पावन रूप हैं, मंगल रूप हैं, उत्तम रूप हैं। शरण रूप व इष्ट रूप हैं। मुझे बारम्बार आपकी ही शरण मिले, आपका ही आश्रय मिले। आपकी ही आज्ञा की आराधना में सदैव करती रहूँ। ऐसी मुझमें शक्ति प्रकट हो। हे प्रभु! आपके चरण-शरण में ही मेरा संपूर्ण जीवन समर्पित हो। आपके पावन

चरण-शरण में मेरी अनन्य भक्ति, बहुमान प्रीति व निष्ठापूर्वक तिकखुत्तों के पाठ से अनन्त-अनन्त बार भाववन्दन हो।

हे आत्मन्! प्रतिपल शुद्ध भावपूर्वक अरिहंत प्रभु का ध्यान कर। जिन्होंने मिथ्यात्व की गांठ को संपूर्णतः नाश किया, राग-द्वेषादि भावों को जीतकर वीतराग दशा को प्राप्त किया। मोह-ग्रन्थी का छेदन किया। ऐसे अरिहंत प्रभु की शरण लेकर मैं भी मोह भाव का क्षय कर वीतराग दशा को प्राप्त करूँ। सभी जीवों को अपने समान समझूँ। किसी को दुःख न दूँ। सबके प्रति मैत्री भाव रखूँ। मैं आत्मा हूँ। चेतना मेरा स्वभाव है, कर्मों से होने वाली विविध अवस्थाएँ मेरी नहीं हैं। मैं ज्ञान-दर्शन, आनन्द व शक्ति का पुंज हूँ। क्षमा व सहनशीलता मेरा स्वभाव है। अतः मैं सदा क्षमाशील बनने का अभ्यास करूँ। समता मेरा स्वभाव है, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण, निंदा-स्तुति, मान-अपमान में सदा सम रहने का अभ्यास करूँ। वह दिन मेरा धन्य कब होगा, जब मैं भी वीतराग भाव में रमण करूँगी। वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा। धन्य-धन्य होगा।

हे सागर समान सिद्ध परमात्म! आप सदा-सदा के लिये, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, निर्विकारी, जन्म-मरण से मुक्त बन गये हैं। आपने समस्त कर्मों का क्षय कर अनन्त आत्म-सुख को प्राप्त कर लिया है। सभी दुःखों से मुक्त होकर अजर, अमर, अविनाशी दशा को प्राप्त कर लिया है। मुझे भी आपके ध्यान से अजर, अमर व शाश्वत पद की प्राप्ति हो। मुझे भी आरोग्य, बोधि और समाधि प्राप्त हो। मैं भी सदा-सदा के लिये सम्पूर्ण कर्मों को काटकर सिद्ध बुद्ध मुक्त बन जाऊँ।

अहो! वर्तमान में सभी गणधर, आचार्य भगवन्त, आप ही गुरुब्रह्मा, गुरुविष्णु, गुरुदेवों महेश्वरः। आप ही परम ब्रह्म स्वरूप हो। आपकी निर्ग्रन्थ दशा, अप्रमत्त दशा, असंग दशा, वीतराग दशा, निस्पृह दशा। धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान में लीनता। अहो प्रभु! मैं भी आपकी ही दशा का चिंतन-मनन व ध्यान करती हुई अप्रमत्त दशा, असंग दशा व वीतराग दशा को प्राप्त करूँ, आपके चरण-शरण में अनन्य भक्ति, बहुमान, प्रीति-निष्ठा पूर्वक अनन्त-अनन्त बार भाव वन्दन हो।

अहो उपाध्याय भगवन्त! आप ज्ञान के साक्षात् देवता हैं। सूत्र व दर्शन के ज्ञाता, उनके रहस्यों को जानने वाले, स्वयं अध्ययन करते हैं तथा भव्य जीवों को भी अध्ययन कराते हैं। हे प्रभु! आपकी सेवा व सान्निध्य से मेरे हृदय में भी ज्ञान का प्रकाश जगमगाता रहे। हे जिनवाणी रहस्य वेत्ता! आपने जिनवाणी रूपी समुद्र का मंथन कर ज्ञान का अमृत प्राप्त किया। आपकी सेवा में मुझे भी ज्ञानामृत प्राप्त हो।

अहो श्री निर्ग्रन्थ गुरु भगवन्त! आप सर्व बाह्य व आभ्यन्तर ग्रंथि रहित शुद्ध रत्नत्रय धर्म की आराधना में लीन, निरारंभी, निष्कलकी, निष्परिग्रही, शुद्ध ब्रह्मचारी, आत्मज्ञान ध्यान में लीन हैं। आपकी आज्ञानुसार श्री जिनमार्ग का स्वरूप समझकर मैं भी निर्ग्रन्थ धर्म की आराधना में लीन हो जाऊँ। हे वैराग्यमूर्ति गुरुदेव! मन की विषय वासना और भोगेच्छा को जीतकर आपने संयम का जो आदर्श सिखाया है, मैं भी उस पथ पर निरन्तर बढ़ती रहूँ।

हे क्षमाशील कृपालु गुरु भगवन्त! शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, मान-अपमान में सदा समभाव रखने की आपकी जीवनकला सीखकर मैं भी सदा आत्म-सुख का अनुभव करती रहूँ।

अहो पंच परमेष्ठि पावन परमात्मा! आप ही मंगलरूप, शरणरूप, उत्तमरूप हैं। मुझे सदैव आपकी ही शरण हो। आपकी आज्ञा की आराधना मैं सतत् करती रहूँ। अहो प्रभु! वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब मैं आपकी आज्ञानुसार मोक्ष-मार्ग का स्वरूप समझकर, सभी जीवों से क्षमत क्षमापना कर, सभी पापों की आलोचना कर, मुनिव्रत धर्म धारण कर रत्नत्रय की आराधना में लीन बनूँगी।

अहो प्रभु! वह दिवस मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब इस जीवन का अंत समय जानकर सभी जीवों से क्षम-क्षमापना कर, सभी पापों की आलोचना कर संथारा संलेखना सहित समाधिमरण को प्राप्त करूँगी।

अहो प्रभु! आपकी ही शरण हो। आपकी आज्ञानुसार मैं भी जिन धर्म का, मर्म समझकर अपने शुद्ध स्वरूप में लीन हो जाऊँ। ध्यानस्थ होकर निजानंद में रमण करूँ। ऐसी मुझमें परम शक्ति प्रगट हो, अपर्णता प्रगट हो।

हे वीतराग प्रभु! निराधार के आधार, दुःखी जनवत्सल, आपकी सदा जय हो, विजय हो। मेरी नस-नस में आपकी गूंज प्रवाहित हो। आपने ही मुझे संसार के स्वार्थ भरे संबंधों का दुःखद स्वरूप बताकर दुःख मुक्ति का मार्ग बतलाया। परमात्मा हमें यही बोध देते हैं कि हे भव्य आत्माओं! तुम्हें यदि सुखी बनना है तो राग-द्वेष मोह के बंधनों को तोड़ दो। इन विभाव भावों को छोड़कर ही तुम सुखी बन सकते हो।

जैन शासन यानी जैन धर्म मेरी माता है। कंचन व कामिनी के त्यागी जिनाज्ञापालक, महाव्रतधारी आचार्य, उपाध्याय व गुरु भगवन मेरे पिता हैं और साधार्मिक मेरे सच्चे मित्र हैं। इसके अलावा सम्पूर्ण संसार मोहजाल है।

इन अरिहंतादि चार शरण को पाकर मैं अपने दुष्कृत्यों की निंदा करती हूँ। राग-द्वेष, अज्ञान-मोह से इस जन्म अथवा पूर्व के भवान्तरों में मैंने पाप का आचरण किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो।

हे प्रभु! मैं महान् पापी, दुष्टी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, रागी, द्वेषी, पापों में, विषयों में, कषायों में, प्रपंचों में पड़ी हुई हूँ। आप ही सभी पापों से, आस्रवों से, जन्म-जरा व मरण के दुःखों से छुड़ाने में समर्थ हैं। त्रिविध ताप से तपित, राग-द्वेष, मोह से ग्रसित, भव्य जीवों को भवोदधि सागर से तिराकर मोक्ष मार्ग में स्थित करने वाले हैं।

मेरा किसी भी जीव के साथ कोई वैर, विरोध, शत्रुता आदि का भाव न हों। प्राणी मात्र के साथ मैत्री भाव, आत्मीय भाव हों। किंचित भी पर पदार्थों में आसक्ति, मूर्च्छा, ममत्व न हों। मेरे निमित्त से किसी भी जीव को कष्ट न हो। प्रत्येक जीव सुखपूर्वक जीवन यापन करें। अशुद्ध और अशुभ विचार-वचन और व्यवहार जन्य प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर निर्मल बनें। सबका कल्याण हों, सभी प्रसन्न हों, सबका मंगल हों, सब सुखी हों, सर्वत्र शांति हो।

---

## आत्म वैभव

हम सब दुःखी हैं। जीवन यात्रा में कदम-कदम पर, क्षण-क्षण में दुःख की अनुभूति हमें होती है, परन्तु यह दुःख कहाँ से आया? क्यों आया? इस संबंध में हम प्रायः विचार नहीं करते। क्रोध आने पर हम अशांत बन जाते हैं। अभिमान आने पर हम विनम्रता भूल जाते हैं, कुटिलता व वक्रता हमारी सरलता को समाप्त कर देती है। लोभ आने पर हम सन्तोष नहीं रखते। अनुकूल पदार्थ मिला हमने राग किया, प्रतिकूल पदार्थ मिला हमने द्वेष किया। उस समय राग-द्वेष के तूफानी जजबातों से हम अपने अध्यात्म-भाव की रक्षा नहीं कर पाते। इन सबका कारण है हमारे जीवन की लक्ष्यहीनता। जीवन चाहे कितना ही अपवित्र बन गया हो, किन्तु उसे पवित्र बनाया जा सकता है। जीवन अंधकार से कितना ही घिर गया हो, उसे प्रकाशमान बनाया जा सकता है। साधक भले ही अपने लक्ष्य के मूल स्वरूप से भटक गया हो उसे लक्ष्य पर लाया जा सकता है। जैन दर्शन कहता है कि तुम क्षुद्र होकर भी विराट बन सकते हो। अपने में विश्वास करना सीखो। यदि अपने में विश्वास नहीं है तो दुनिया की कोई ताकत तुम्हारा उत्थान नहीं कर सकती। हम अपने आत्मतत्त्व को समझें, प्रभु की वाणी को समझें व आत्मा को निर्मल बनाने का पुरुषार्थ करें।

अनन्तकाल से हमने चेतन से भिन्न जड़ तत्त्व पर विश्वास किया, उसी का विचार किया, उसी का अधिकाधिक संग्रह किया। इस आशा से कि इसी से हमें सुख, शांति व संतोष मिलेगा, परन्तु पुद्गलों का इतना संग्रह करने पर भी, पुद्गलों का असीम प्रेम हमें सुख, शांति, संतोष की उपलब्धि आज तक नहीं करा सका। हमने अपने तन पर विश्वास किया, अपनी इन्द्रियों पर विश्वास किया, अपने मन पर विश्वास किया। इन्हीं को समझने का हमने प्रयत्न किया। इनकी वृत्तियों के अनुसार ही हमने आचरण किया। हम अपने तन के पिंजरे में ऐसे फंस गये, इतने उलझ गये कि हमें आत्म सत्ता का बोध ही नहीं हुआ। उस दिव्य सत्ता में हमारी आस्था जम नहीं सकी। अहंता और ममता के भयंकर बंधनों में हम इतने जकड़ गये कि उस अजर, अमर, विशुद्ध आत्म-तत्त्व पर न हमारी आस्था रही, न विचारणा रही और न हमारी कृति, स्व स्वरूप के योग्य बन पायी। जो आस्था, निष्ठा व श्रद्धा अपने आत्म वैभव पर होनी चाहिये, वह अपने से भिन्न 'पर' पर द्रव्य में बनी रही। यहीं हमारे पतन का सबसे बड़ा कारण है। जब तक साधक तन-मन व इन्द्रिय भोगों से ऊपर उठकर अपने विशुद्ध स्वरूप को समझने का पुरुषार्थ नहीं करेगा, तब तक दुःखों से मुक्त नहीं बन सकता। अतः अपने पर विश्वास करें, अपने को समझें व अपना ही सुधार करें। यही मुक्ति का पथ है। आत्म-श्रद्धा, आत्मज्ञान व आत्म रमणता ही मोक्ष मार्ग है।

ज्ञानी कहते हैं कि हे आत्मन्! तू प्रभु है, तू परमात्मा है व तू ही परम ब्रह्म है। तूने अपने अज्ञान के कारण ही अपने से भिन्न जड़ तत्त्व में आनन्द मान रखा है, परन्तु वास्तव में जड़ से कभी आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। अपने मोह, अज्ञान व राग-द्वेष के कारण ही यह आत्मा जन्म-मरण के चक्कर में फंसा हुआ है। आत्मा का सबसे बड़ा भयंकर बंधन अहं व ममत्व बुद्धि का है। अहं व ममत्व के कारण आत्मा अपने निज स्वरूप को पहचान नहीं पाता। आत्म बोध न होने के कारण आत्मा अनन्त काल से संसार में, चार गति व 84 लाख योनियों में परिभ्रमण करता आ रहा है। संकल्प व विकल्प के खेल रात-दिन हमारे मन के मैदान में होते रहते हैं। इन खेलों को बनाने वाले भी हम व बिगाड़ने वाले भी हम हैं। हमारी मोहबुद्धि ही समस्त दुःखों व पापों की जड़ है। मोह बुद्धि को तोड़ने के लिये ही साधना की जाती है। ममत्व व मोह बुद्धि के कारण ही पर पदार्थों में सुख-दुःख की प्रतीति होती है। यह प्रतीति भ्रान्ति रूप है। दुःख व सुख किसी पदार्थ विशेष में नहीं होते, वे होते हैं, ममत्व भाव में। अतः ममत्व भाव ही सुख-दुःख का मूल केन्द्र है। संसार का सुख भी दुःख रूप ही है। आत्मा में सदगुणों की अनन्त शक्तियाँ भरी हुई हैं। किन्तु उसका ज्ञान व बोध न होने से, यह जीव संसार-दुःखों की अग्नि में झुलसता रहता है। आत्मा में अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व अनन्त चारित्र की अक्षय निधि और अपार भंडार भरा पड़ा है। किन्तु इस अल्पज्ञ जीव को इसका ज्ञान नहीं है। इसलिये अक्षय व अनन्त शक्ति का प्रभु होकर भी यह आत्मा आज से नहीं अनन्त अनन्त काल से अपने को दीन-हीन व अनाथ समझता आया है। संसार में जितना भी दुःख है, सब निज स्वरूप के अज्ञान का है। निज स्वरूप का सम्यक् बोध होने पर सम्यग् दृष्टि प्राप्त होने पर, किसी प्रकार का दुःख व क्लेश नहीं रहता।'

अतः सच्चा सुख प्राप्त करने के लिये हम अपने आत्म तत्त्व को समझें और अपने आत्म-वैभव को प्राप्त करें।

---

## आदर्श जैन, धर्मावलम्बी के मापदण्ड

जैन कोई जाति नहीं धर्म है। जैन धर्म के सिद्धान्तों में जो दृढ़ विश्वास रखता है, उसके अनुसार आचरण करता है, वही सच्चा जैन होता है। जिसकी रग-रग में व जीवन के कण-कण में हर क्षण धर्म की साधना झलकती

है, वही सच्चा जैन होता है। जैन का जीवन आदर्शमय होता है, धर्म उसके जीवन से अलग नहीं होता। जो सदैव मन व इन्द्रिय-विकारों को जीतने का अभ्यास करता है, वह सच्चा जैन होता है।

जैनत्व और कुछ नहीं, आत्मा की शुद्ध स्थिति है। संसारी आत्मा को जितना कसा जाय यानी कषाय से बचाया जाय उतना ही जैनत्व का विकास होता है। संयम व नियमपूर्वक जीवन जीने वाला जैन होता है। जिसका आचरण व व्यवहार शुद्ध व पवित्र होता है। पर आज हमारी जीवन शैली में, व्यवहार में, प्रवृत्ति में व कथनी और करणी में स्पष्ट अन्तर दिखाई दे रहा है।

जैन धर्म, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकान्त के सिद्धान्तों से ओत-प्रोत होता है। जैन जीवन में हित-मित सादगी व सहिष्णुता की झलक मिलती है तथा सर्वत्र गुणानुरागी व अच्छाई के अपनाने वाला विनम्र, वात्सल्य एवं स्नेहयुक्त जीवन जीने का अभ्यासी ही जैन होता है। जैन धर्म जाति अथवा वर्ग विशेष का धर्म नहीं है, वह तो वीतराग विज्ञान है। जहाँ नर से नारायण, जीव से शिव, खुद से खुदा व आत्मा से परमात्मा बनना सिखाया जाता है।

## आदर्श जैन की योग्यताएँ

1. जो हृदय से उदार होता है।
2. जैन हित-मित व मृदु भाषी होता है।
3. जो सकल विश्व की शांति चाहता है।
4. जो सबको प्रेम, स्नेह व आत्मीय दृष्टि से देखता है।
5. संकट की घड़ी में भी जिसके चेहरे पर मुस्कराहट रहती है।
6. जैन अभ्युदय में भी नम्र रहता है।
7. जैन वैभव पाकर कभी नहीं अकड़ता।
8. जो किसी से छल-कपट नहीं करता।
9. जैन सत्य के समर्थन में किसी से नहीं डरता।
10. जो पाप से सदा डरता है अर्थात् पाप भीरू होता है।
11. जो कम खाता है, कम बोलता है, व्यर्थ नहीं हंसता है।
12. जैन विनय-विवेकपूर्ण आचरण करता है।
13. जैन सम्पूर्ण विश्व की शांति चाहता है। अनेकांत दृष्टि रखता है।
14. जैन रात्रि भोजन का त्यागी होता है।
15. जिसके रोम-रोम में धर्म की साधना झलकती है।
16. अभ्युदय से भी नम्र रहता है।
17. जैन गरीबी से नहीं शर्माता है।
18. जैन वैभव पाकर कभी नहीं अकड़ता।
19. जैन बड़ों की आज्ञा मानता है।
20. जैन सदा प्रगतिशील रहता है।
21. अशुभ से शुभ और शुभ से शुद्ध की ओर बढ़ता है।
22. ज्ञान के प्रचार व प्रसार में सहयोग देता है।
23. जैन समय का सदुपयोग करता है।
24. जैन सप्त कुव्यसन का त्यागी होता है।

25. जैन होटलों के खाने से परहेज रखता है।
26. जैन जमीकंद व अभक्ष्य का प्रयोग नहीं करता।

## मानव भव की दुर्लभता

हे बुद्धिमान् मानव! तू मानव बनकर उत्पन्न हुआ, पर तूने मानव जीवन का खरा महत्त्व नहीं समझा। यदि तूने मानव जीवन की महत्ता को समझ लिया तो तेरा जीवन सफल है और यदि नहीं समझा तो तेरा जीवन निष्फल है। तू मानव है, मानव बनकर अपने हाथों से हल्के कार्य करके दानव मत बन। नहीं तो यह भव मिलना बड़ा मुश्किल हो जायेगा। इस अनमोल जीवन की कीमत समझ। जिन-जिन के पीछे तू रात-दिन दौड़ रहा है, वे तुझे क्या देंगे? तू यदि चाहे तो इस देह से देव बन सकता है और चाहे तो दानव और तू चाहे तो इसी देह से मुक्ति का वरण भी कर सकता है और चाहे तो चौरासी के चक्र में भ्रमण भी कर सकता है। मानव जीवन की शोभा तभी है, जब तू मुक्त बनने का प्रयास करें।

यह जीवन गोल्डन चांस है जो तुझे मिला है। पर यदि तूने इस जीवन से लाभ नहीं उठाया तो फिर बहुत पछताना पड़ेगा। इस जीवन को जिसने हार दिया, उसने बहुत कुछ हार दिया। यहाँ का विनाश महान् विनाश है। यहाँ जो ठोकर लग गई तो फिर सर्वत्र ठोकरें खाने को मिलेंगी और यदि इस जीवन में आनन्द, सुख व शांति प्राप्त हो गई तो समझ लो अब सदा-सदा के लिए कष्टों से किनारा मिल गया।

हम अनन्त बार मनुष्य बनें, लम्बे, चौड़े, सुरूप व बलवान पर लाभ कुछ भी नहीं मिला। बल्कि कभी-कभी लाभ की अपेक्षा हानि ही हुई। अनन्त संसार में भ्रमण करते-करते मनुष्य जन्म पाकर भी कभी चोर बन गये, जब निर्दयता के साथ दूसरों का धन लूटा। कभी कसाई बनें, जब निरीह प्राणियों का खून बहा कर प्रसन्न हुए। कभी राजा बने, तब बात-बात में लाखों मनुष्यों को रणचंडी की भेंट चढ़ाया। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य बनकर भी न मालूम कितने प्राणियों को बर्बाद किया, दुःख दिया, तड़फाया। रूलाया। मनुष्यता के अभाव में मानव भव मिलना भी बेकार हुआ। उससे कुछ लाभ नहीं मिला। हम संसार सागर में गोते खाते रहें। मिला मिलाया सब धूल में मिल गया। काता पिंजा फिर से कपास हो गया। अतः हे आत्मन्! जब जागृत हो जा, ऐसी भूलें बार-बार मत दोहराना।

हे आत्मन्! आज भी रात-दिन तू इस शरीर रूपी मिट्टी के घरोंदे को ही सजाने संवारने में लगा है। सुबह से लेकर शाम तक घाणी के बैल की तरह आंखें बंद किये तन तोड़ परिश्रम करता रहा पर क्या मिला? कितने गरीबों का शोषण व अत्याचार करके येन-केन-प्रकारेण सुख सुविधाओं के साधन जुटाने में इस दुर्लभ देह को बर्बाद कर दिया। देह रूपी घर की सेवा-सुरक्षा करने में अपना अमूल्य समय व अनमोल जीवन नष्ट कर दिया। अहा! अपने अहंकार को पुष्ट करने के लिये मैंने क्या-क्या किया। जो शरीर सौ पचास वर्षों के बाद एक दिन नष्ट होने वाला है उसकी इतनी गुलामी क्यों? इस अजर अमर शक्तिशाली आत्मा की कुछ भी सार संभाल नहीं की। इस शरीर को ही मैं सब कुछ समझ बैठा। देह के जन्म को अपना जन्म, देह की आधि-व्याधि को अपनी आधि-व्याधि व देह की मृत्यु को अपनी मृत्यु समझ लिया। इन सब मिथ्या संकल्पों ने मुझे अपनी ओर झांकने का मौका ही नहीं दिया। हमेशा बाह्य जगत के भौतिक भोग विलास के साधनों में ही उलझाये रखा। अपने आत्मदेव का भान ही नहीं हुआ। अतः हे आत्मन्! अब भी समझ आई है तो जड़ की अपेक्षा चेतन का महत्त्व समझ। उसकी अनुभूति कर। अपनी शक्तियों का विकास कर इस मनुष्य जन्म को सार्थक कर।

मानव जीवन दुष्कर है, महान् है। मानव के पास बुद्धि का वैभव है, वह कोयले की खान में से हीरे निकाल सकता है। मिट्टी और राख में से सोना बना सकता है। मनुष्य एक कलाकार है, उसे अपनी कला का प्रयोग मिट्टी के घरोँदे बनाने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये, बल्कि आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। हमारा जीवन धर्ममय हो, सत्यमय हो, प्रेममय हो, नीतिमय हो, सुखमय हो यही मानवीय कर्तव्य है।

**मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ?**

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गंध नहीं।  
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी, पर से कुछ भी संबंध नहीं।  
मैं राग रंग से भिन्न-भेद से, भी मैं भिन्न निराला हूँ।  
मैं हूँ अखण्ड चैतन्य पिंड, निज रस में रमने वाला हूँ।  
मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं।  
मैं शुद्ध-बुद्ध अविरुद्ध एक, पर परिणति से अप्रभावी हूँ।  
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।

## **मन की अशांति कारण व निवारण**

1. जब मन में आशा, इच्छा, कामना, तृष्णा इत्यादि का अम्बार लगा हो तथा उनकी पूर्ति नहीं हो तो मन अशांत रहता है।
2. जब मन में अति लोभ हो व उसकी पूर्ति नहीं हो, तो मन अशांत रहता है।
3. जब मन में ईर्ष्या-द्वेष, घृणा व जलन भरें हुए होते हैं, तो मन अशांत रहता है।
4. जब मन में राग व मोह रहेगा तो मन अशांत रहेगा।
5. जब मन के किसी भी कोने में पाप भरा हुआ है, तो मन अशांत रहता है।
6. गुप्त पाप करने वालों का मन अशांत रहता है।
7. भयभीत व्यक्ति भी अशांत रहता है। भय के अनेक कारण हैं। भय किसी भी कारण से हो सकता है।
8. जब व्यक्ति सांसारिक भोगों को भोगने का इच्छुक होता है, तो मन अशांत रहता है। भोगों की तृप्ति कभी नहीं होती है। मन में हर समय उद्वेग रहता है।
9. जब तक मन इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहेगा, तब तक मन अशांत ही रहेगा।
10. किसी भी प्रकार का दुःख, चाहे तन का हो, मन का हो, मन को अशांत कर देता है। वेदना, चिंता, दुःख, व्यथा, अभाव, वियोग, व्याधि इत्यादि ये अशांति के जनक हैं।
11. जो ऋणि सो महादुःखी। ऋण किसी भी प्रकार का हो, व्यक्ति को दुःखी कर देता है।
12. पराधीन सपने सुख नांही। पराधीनता में दुःख ही दुःख है।
13. भौतिक उपलब्धियों का नाश- चाहे धन का हो, स्त्री का हो, पति का हो, पुत्र का हो, पद का हो, मन को अशांत व उद्विग्न कर देता है।
14. अस्वस्थता किसी भी प्रकार की हो, शरीर के किसी भी हिस्से में हो, मन को अशांत कर देती है। अगर व्याधि असाध्य है, तो फिर भगवान ही मालिक है। असाध्य बीमारी में अगर पूर्ण पराधीनता हो जाती है तो नरक इसी जन्म में व इसी जीवन में हाथो-हाथ है।

15. स्थायी रूप से दुष्ट व नीच से सम्पर्क हो जाना महापाप का फल है। शान्ति का प्रश्न ही नहीं है।
16. गंदा पड़ोस व गंदा वातावरण मन को अशांत व उद्धिग्न कर देता है।
17. अगर हमारी इच्छाएँ, आशाएँ कामनाएँ असीमित हैं, तो हमारे दुःख भी असीमित हैं। फिर हमें सुख शांति की आशा रखना व्यर्थ है।
18. तृष्णा खराब है। बहुत खराब है। लेकिन गरीबी व अभाव उससे भी खराब है। गरीबी सबसे बड़ा अभिशाप है। गरीब व्यक्ति महादुःखी रहता है उसका मन हर समय अशांत रहता है।
19. **धोखा हो जाना**- 1. जीवन साथी धोखा दे देता है। 2. पति-पत्नी को या पत्नी पति को स्थायी रूप से छोड़कर चली जाये। 3. औलाद माता-पिता को छोड़कर चले जाये या औलाद धन-माल हड़प कर बैठ जावे तथा माता-पिता को दर-दर का भिखारी कर दें। 4. परिजन तो प्रायः कृतघ्न होते ही हैं। प्रायः व्यक्ति अपनों से ही ठगा जाता है।
20. अपना समझकर किसी को धन-माल अथवा मकान सुपुर्द किया और वह उसे दबाकर बैठ गया। रिश्तेदार व भाई-बंधु माल संपत्ति दबाकर बैठ गये।
21. अगर व्यक्ति सावधान नहीं होता तो उसका धन माल संपत्ति दूसरे हड़प लेते हैं। व्यक्ति स्वयं हाथ मलता ही रह जाता है।
22. कुंवारी कन्याओं को सब्ज बाग दिखाकर कई बदमाश चक्कर में ले लेते हैं तथा बाद में अंगूठा बताकर भाग जाते हैं, कई ऐसे बदमाश होते हैं जो विवाहित औरतों का घर संसार बिगाड़ देते हैं।
23. सावधानी तो पग-पग पर जरूरी है। वरना धोखा पग-पग पर है। धोखा खाये हुये व्यक्ति का मन अशांत ही रहता है। **धोखा व दगा वही देते हैं, जो आपके सम्पर्क में हैं। अतः ज्यादातर सावधानी नजदीकी लोगों व रिश्तेदारों से रखें। विश्वास करों पर अंधविश्वास न करों। विश्वास में ही विश्वासघात हो सकता है।**
24. जीवन में किसी एक मोड़ पर अगर धोखा या विश्वासघात हो जाता है तो सारे जीवन का संतुलन बिगड़ जाता है, फिर पश्चाताप के सिवाय कुछ भी हाथ में नहीं रहता है। जीवन भर मन पुनः संतुलित नहीं होता है। कई व्यक्तियों के घर संसार बिगड़ गये, अदालते ऐसे मुकदमों से भरी पड़ी है, जिनमें बीती है, वही जानते हैं।
25. सुखों के भोगों की इच्छा होने से मन उद्वेग को प्राप्त होता है। भोग कैसे भी हों पुण्यों की कीमत पर हैं। पुण्य नष्ट होने से दुःख आते हैं। भोग भोगने से दुःखों का सर्जन होता है। इच्छाएँ रबड़ के तम्बू की तरह बढ़ती ही जाती है। भोग भोगने से अग्नि में घी डालने की तरह अग्नि शांत होने की बजाय बढ़ती ही जाती है। भोगों से काम, क्रोध, मोह व लोभ की वृद्धि होती है। यह सभी नरक के द्वार हैं। भोगी व्यक्ति संसार में रहता है तब तक रोगी व दुःखी रहता है, तथा उसके पश्चात् नरक में जाता है। भोग की इच्छा अधोगति में गिराती है।
26. अगर मन के किसी कोने में इच्छा, चाह, कामना छुपी हुई है, तो सुख व शांति होना असंभव है। आशाएँ निराशाएँ पैदा करती हैं। मन अशांत होता है।
27. अतः किसी प्रकार की इच्छा, आशा, चाह, तृष्णा, लोभ मत रखें। वस्तु के त्याग में इतना लाभ नहीं है। जितना वस्तु की इच्छा ही नहीं होने में लाभ है। मुझे जरूरत ही नहीं है। वस्तु का त्याग तो कर दिया, लेकिन उसकी इच्छा ज्यों की त्यों है तो वह त्याग नहीं है, ढोंग है। इसी प्रकार भोग की इच्छा ही नहीं होने में लाभ है।
28. अपनी जरूरतों को सीमित करों बढ़ाओं मत।
29. अपना काम खुद करों। स्वावलम्बी बनां। दूसरों पर निर्भर मत रहें।

30. पराधीनता किसी भी प्रकार की होने मत दो। खास तौर से पैसा और स्वास्थ्य को संभाल कर रखो। फिजूल खर्ची मत करो। मितव्ययी बनो।
31. व्यसन, नशा इत्यादि मत करो।
32. व्याभिचार इत्यादि मत करो। पराया धन व पराई स्त्री की इच्छा मत रखो।
33. राग-द्वेष मत करो।
34. ईर्ष्या द्वेष जलन घृणा मत करो।
35. काम-क्रोध व लोभ नरक के द्वार हैं। इनसे सदा दूर रहो।
36. इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति मत रखो।
37. भोग-भोगने की इच्छा मत रखो।
38. सादा सरल एवं सदाचारी जीवन जीओ।
39. पापों का सर्वथा अभाव करो।
40. अपने साधन में सीमित रहकर दान पुण्य परोपकार नित्य व निरन्तर करो।
41. किसी को भी लेशमात्र का दुःख मत पहुँचाओ।
42. सत्य भी कटु एवं अप्रिय मत बोलो।
43. अपना कर्तव्य निष्ठापूर्वक करो।
44. किसी का गुप्त भेद प्रकट मत करो। किसी के ऊपर झूठा आरोप अथवा लांछन मत लगाओ।
45. हर मनोज्ञ-अमनोज्ञ, संयोग-वियोग, हानि-लाभ, दुःख-सुख, यश-अपयश में समभाव रखो। अपना संतुलन बिगाड़ने मत दो।
46. अनीति, अधर्म, अत्याचार, अन्याय मत करो।
47. हितकर खाओ, कम खाओ, पोषक खाओ तथा ऋतु अनुसार खाओ।
48. मुख्य बात यह है कि जो समभावों में रहते हैं, सहन शक्ति वाले हैं, छोटी-छोटी बातों पर अपना संतुलन नहीं बिगाड़ते हैं, वे मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ रहते हैं। वे हर परिस्थिति के साथ अपना समझौता कर लेते हैं। वे यह समझते हैं कि सभी बातें मन के अनुकूल इस संसार में किसी के न हुई हैं और न होंगी। इसलिये मानसिक संतुलन खोने से कोई लाभ नहीं है। समत्व भाव बहुत अभ्यास व सत्संग से प्राप्त होता है। मन की व्यथा को मन में रखना किसी से नहीं कहना तथा प्रगट होने नहीं देना, ये साधारण बात नहीं है। बहुत बड़े तप का फल है। इस संसार में संतुलन बिगाड़ने से अथवा क्रोध करने से या संताप करने से कोई लाभ नहीं है। हर परिस्थिति में धीर गंभीर रहो। ये संसार स्वार्थी है। आपसे स्वार्थ होगा तो आपके तलवे चाटेंगे और स्वार्थ निकलने के बाद मुंह फेर लेंगे।
49. समस्या से जूझना सीखो। जीवन समस्याओं से भरा हुआ है। समस्या आयें तो उसका समाधान खोजो, उससे भयभीत मत बनो। समस्या के समाधान का महत्त्वपूर्ण सूत्र है सन्तुलन। सन्तुलन खोने वाले की सदैव हार होती है। अतः डरो मत। सन्तुलन बनाये रखो। समाधान अपने आप मिलेगा। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मन की शांति भंग न हो, ऐसा अभ्यास प्रतिदिन करते रहो। जीवन की छोटी-छोटी बातों से प्रसन्नता प्राप्त करने का ढंग सीख लें। जीवन में इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देंगे तो यह मनुष्य जीवन सफल व सुखी बन सकता है। जीवन को सुखमय बनाना हमारे अपने हाथ में है।

## यह जरूरी नहीं है?

1. धन दौलत, पैसा तो आपके पास खूब हो सकता है, लेकिन सुख व शांति हो यह जरूरी नहीं है।
2. पुत्र तो आपके अनेक हो सकते हैं लेकिन आज्ञाकारी व सपूत ही हो, यह जरूरी नहीं है।
3. औरत आपके सुन्दर व रूपवान हो सकती है, पर वह अनुकूल व सुखकारी हो, यह जरूरी नहीं है।
4. भोग-उपभोग का सामान तो आपके पास खूब हो सकता है, लेकिन वह आप से भोगा ही जायें, यह जरूरी नहीं है।
5. खाने-पीने की वस्तुएँ आपके पास बढ़िया व श्रेष्ठ हो सकती है, लेकिन वे आपसे पचाई जाये, यह जरूरी नहीं है।
6. व्यक्ति व वस्तुएँ जो भी आपको उपलब्ध है, वे सब आप के लाभ के लिये ही हो, यह जरूरी नहीं है।
7. इस संसार में जिस जगह लाभ है, उसी जगह हानि भी है, जिस जगह अनुकूलता है, प्रतिकूलता भी वहीं है।
8. पलंग तो बढ़िया से बढ़िया हो सकता है, पर नींद आये यह जरूरी नहीं है।
9. सुख के सभी साधन होते हुये भी, सुख शांति हो यह जरूरी नहीं है।
10. भोजन अच्छा तैयार होने पर भी सुख हो यह जरूरी नहीं है।
11. शादी तो बढ़िया जगह हो सकती है, पर घर संसार में बराबर सुख शांति हो यह जरूरी नहीं है।
12. आप हर कार्य में पूरी सावधानी रख सकते हैं, पर होनहार महा बलवान होता है।
13. पैसों से सुख के साधन हो तो सकते हैं, लेकिन सुख हो यह जरूरी नहीं है।
14. पैसों से दवा मिल सकती है, पर अच्छा सुन्दर स्वास्थ्य शरीर मिलें, यह जरूरी नहीं है।
15. पैसों से भोग का सामान तो हो सकता है, लेकिन भोजन की क्षमता नहीं मिल सकती है।

## क्या लाभ?

1. मनुष्य जीवन मिला और आत्म-शुद्धि नहीं की तो क्या लाभ ?
2. साधना की और शुद्धि नहीं हुई तो क्या लाभ ?
3. त्याग तो किये लेकिन इच्छा व आसक्ति न मिटी तो क्या लाभ ?
4. शास्त्र तो पढ़े लेकिन यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ तो क्या लाभ ?
5. ज्ञान तो हुआ लेकिन आचरण नहीं हुआ तो क्या लाभ ?
6. आचरण हुआ लेकिन शुद्धि नहीं हुई तो क्या लाभ ?
7. मनुष्य शरीर मिला फिर भी औरों का उपकार नहीं किया तो क्या लाभ ?
8. पैसा हुआ लेकिन दान पुण्य परोपकार नहीं किया तो क्या लाभ ?
9. घर बार छोड़ साधु हुए लेकिन मन संसार में रहा तो क्या लाभ ?
10. चरण सिद्धि की ओर बढ़ाये लेकिन राग-द्वेष, मोह, तृष्णा, आशा, इच्छा, कामना लोभ नहीं मिटे तो क्या लाभ ?
11. इन्द्रियों तथा मन को नहीं जीता तो अन्य जीत से क्या लाभ ?
12. घर संसार नहीं बसे, तो शादी करने से क्या लाभ ?
13. कृषि नष्ट हो जाने के बाद बरसात होवे तो क्या लाभ ?
14. जहाँ मान-सम्मान नहीं हो, वहाँ जाने से क्या लाभ ?

15. जीवन में समभाव नहीं आया तो क्या लाभ ?
16. जीवन में प्राणी मात्र के प्रति दया भाव नहीं आया तो क्या लाभ ?
17. जीवन अभय नहीं हुआ तो क्या लाभ ?
18. जीवन में यदि यश कीर्ति के काम नहीं किये तो क्या लाभ ?
19. जीवन यदि कुल, समाज एवं देश के लिये उपयोगी नहीं हुआ तो क्या लाभ ?
20. जाने हुए अच्छे कार्य किये नहीं तथा जाने हुये बुरे कार्य छोड़े नहीं तो जानकारी होने का क्या लाभ ?
21. ऐसे कर्म किये जिससे मनुष्य गति से भी अधोगति यानि नरक, तिर्यन्च मिली तो मनुष्य भव मिलने से क्या लाभ ?

## साधक कौन ?

जीवन में जो सुख सुविधाएँ, अनुकूलताएँ, मनोज्ञ परिस्थितियाँ आती है, वे पुण्य से मिलती है। हर सुख सुविधाओं के भोग से पुण्य खर्च होता है तथा अन्ततोगत्वा दुःखों का सृजन होता है। अतः सुख सुविधाओं में भी सम रहें। फूलों मत। अनुकूलता में अभिमान नहीं करने से, अपनी बढ़ाई नहीं करने से तथा नहीं फूलने, इतराने से कर्म बंधन नहीं होते।

जो व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए भी धीर गंभीर है। जिस पर अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों का प्रभाव नहीं होता है, जो सुख-दुःख, मान-अपमान, मनोज्ञ-अमनोज्ञ, यश-अपयश सभी परिस्थितियों में सम रहते हैं। विचलित नहीं होते हैं तथा जिसको उद्वेग नहीं होता है, वह व्यक्ति साधक है। जो हो गया सो अच्छा, जो नहीं हुआ, वह भी अच्छा। जो मिल गया अच्छा, जो नहीं मिला, वह भी अच्छा। हर परिस्थितियों में सागर की तरह गंभीर, गृहस्थ में रहते हुए भी पूर्ण परिग्रह के त्यागी। किसी वस्तु तथा व्यक्ति पर अपना अधिकार नहीं। सीमित वस्तुओं का उपयोग, उपभोग करने वाले होते हैं। किसी काम को छोटा बड़ा नहीं समझते। दूसरों की सेवा लेवे नहीं, खुद के दुःख दर्द प्रगट करें नहीं, साधारणतया सहन कर लेवे, कोई बड़ी उपलब्धि तथा सिद्धि प्राप्त होने पर भी कभी प्रदर्शन न करें। तृष्णा, मोह व लोभ के पूर्ण त्यागी। इन्द्रिय विषयों में कोई आसक्ति नहीं। ये संक्षेप में साधक के लक्षण होते हैं। समत्व भाव वाले साधक के पाप तथा बंधन कट जाते हैं। नये कर्म बंधन होते नहीं। वह निरन्तर आत्म शुद्धि की और अग्रसर होता है। समत्व धारण करने से ही व्यक्ति साधक बनता है।

समत्व भाव की साधना करने वाले साधक को आसक्ति का, राग-द्वेष का, भोगों का, तृष्णा का मोह का, लोभ का, पापों का, दूषणों का, इन्द्रिय-विषयों का, परिग्रह इत्यादि का त्याग तो करना ही पड़ता है। शुद्ध जीवन में इन दूषणों का अभाव हो जाता है। इतना होने पर विनय, सरलता, सदाचार, तथा विवेक जीवन में स्वतः ही आ जाता है। उनके लिये कोई प्रयत्न प्रयास की जरूरत रहती ही नहीं है। संसार की वस्तुओं तथा व्यक्तियों से विरक्ति होती ही चली जाती है। पूर्ण शुद्धि होने पर लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

## आत्महित-चिंतन

जब तक हमें यह ज्ञान नहीं होता कि मैं कौन हूँ? और मुझे क्या करना चाहिये? तब तक आत्म हित के लिये प्रवृत्ति नहीं होती।

### 1. मैं कौन हूँ ?

एगो में सासओ अप्पा नाण दंसण, संजुओ ।  
सेसा में बहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा ॥

जरा सोचो मैं कौन हूँ। सर्दी गर्मी शरीर को लगती है। भूख-प्यास प्राणों को लगती है। अनुकूलता-प्रतिकूलता मन को होती है। शुभ-अशुभ पुण्य-पाप का निर्णय बुद्धि करती है। पर मैं न शरीर हूँ न प्राण हूँ, न बुद्धि हूँ। मैं तो इन सबको सत्ता देने वाला इन सबसे न्यारा अजर, अमर, शाश्वत आत्मा हूँ।

जो ज्ञान-दर्शन युक्त आत्मा है वही वास्तव में मैं हूँ। वह शाश्वत है। सदा काल लोक में, परलोक में, स्वर्ग में, नरक में, सर्वत्र मेरे साथ रहने वाली है। इसके अलावा जितने भी पदार्थ हैं, सब संयोगजन्य हैं। संयोग मिलने पर एकत्र हुए हैं वियोग होने पर बिखर जायेंगे।

क्या मैं शरीर हूँ? नहीं, मैं शरीर नहीं, पर शरीरधारी आत्मा हूँ। शरीर में रहते हुये भी, शरीर से बिल्कुल भिन्न अनन्त ज्ञान व अनन्त सुख का भंडार अजर, अमर, अविनाशी आत्मा हूँ। शरीर के चिता में जल जाने से भी आत्मा नहीं जलती। शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने पर भी आत्मा का कभी हनन नहीं होता। न यह कभी जन्मता है और न ही कभी मरता है। न घटता है और न बढ़ता है। रोग से, व्याधि से, जरा से कभी पीड़ित नहीं होता। इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न पानी गला सकता है, न हवा सुखा सकती है। जो शाश्वत है, त्रिकालवर्ती है, ऐसी मैं आत्मा हूँ।

सच्चिदानंदी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी मैं आत्मा हूँ, अविनाशी मैं आत्मा हूँ।

आत्म-भावना भावता, जीव लहे केवल ज्ञान रे।

शुद्ध भावना भावता, जीव लहे केवल ज्ञान रे।।

## 2. मैं कहाँ से आया हूँ?

हे आत्मन्! क्या तुझे पता है कि तू कहाँ से आया है? चार गतियों में गोते खाते-खाते, चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते, इस दुर्लभ मनुष्य देह में आया है? जरा सोच तो सही कि तू इस देह में कैसे आया? जरूर तूने अपने पूर्व भव में किसी को साता दी होगी, सुख उपजाया होगा, दान दिया होगा, दया पाली होगी। निष्कपट रहा होगा, सत्कार्य किये होंगे तभी तू इस मानव देह में आया। जीव जैसा अच्छा या बुरा यानी शुभ या अशुभ कार्य करता है, उसी के अनुरूप उसे गति जाति, योनि आदि मिलते हैं।

## 3. अब मैं कहाँ जाऊँगा?

जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित होती है। जीवन मृत्यु का अंतिम सत्य है। हम मौत को भूल सकते हैं, पर मौत हमें कभी नहीं भूल सकती। यह आयु पूर्ण होने के बाद मुझे भी यहाँ से कहीं न कहीं अवश्य जाना पड़ेगा। जरा सोच! यहाँ से मरण प्राप्त कर तू कहाँ जायेंगा। इस जीवन में जैसे अच्छे या बुरे कार्य किये हैं, उन किये हुए कर्मों को भोगने के लिए, मुझे भी किसी न किसी गति-जाति आदि में जाना ही पड़ेगा।

## 4. मैं क्या करता हूँ?

इस वर्तमान जीवन को पाकर आज तक मैंने कैसे-कैसे कार्य किये हैं और अब भी क्या करता हूँ? आत्मा को भूलकर, मात्र शरीर व शरीर से संबंधित परिवार वालों के पोषण के लिये रात-दिन मशगूल बन रहा हूँ। पांचों इन्द्रियों के सुहाने वाले विषयों को भोगने का कार्य ही निरन्तर कर रहा हूँ और उसी के साधन रूप धन आदि के लिये रात-दिन परिश्रम करके अपने जीवन को व्यर्थ तो नहीं गंवा रहा हूँ। हे आत्मन्! जरा सोच क्या यही सब करने के लिये तुझे यह अमूल्य जन्म मिला है?

## 5. मेरा कर्तव्य क्या है ?

हे आत्मन्! जरा सोच। क्या यहीं तेरा कर्तव्य है ? मात्र इस शरीर व शरीर से संबंधित स्त्री पुत्रादि व परिवार का भरण पोषण करना। क्या इसीलिये हमें मानव जन्म मिला ? नहीं। अब मुझे इस दुर्लभ मानव जन्म को पाकर अठारह पापों का त्याग कर श्री जिनेश्वर देव की आज्ञानुसार उत्तम प्रकार के धर्म-कार्य करने चाहिये। यह जीवन मुझे आत्मा से परमात्मा बनने के लिये प्राप्त हुआ है। इसीलिये नर से नारायण बनने का पुरुषार्थ, ही मुझे हमेशा करना है। यही मेरा कर्तव्य है।

सदैव इस तरह चिंतन करने से भौतिक पदार्थों का लगाव छूटने लगता है। जीवन में जो हाय धन, हाय धन का आकर्षण है, उसमें कमी आती है। पाप प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे कम होकर छूटने लगती हैं। संसार की समस्त वस्तुएँ अध्रुव हैं, अनित्य हैं, अशरण हैं। संसार असार है, इसमें कुछ भी सार नहीं है। जिधर देखों उधर ही विपत्तियाँ, कष्ट और चिंताएँ मुंह बाये खड़ी हैं। विपत्तियों की आग से यह संसार जल रहा है। जन्म-मरण-जरा व्याधियों की आग जहाँ देखें वहाँ चारों ओर जल रही है। इस जलते हुए संसार की आग से हम अपनी आत्मा की रक्षा कैसे कर सकते हैं ? इसका हमें बारम्बार चिंतन करना चाहिये।

---

## सोच तेरा क्या होगा ?

हे आत्मन्! भवान्तर से लाई हुई पुण्य सामग्री को खा खाकर ( भोग-भोगकर ) तू पूरी कर रहा है और नया उपार्जन करने के लिये कभी अच्छे कार्य करने का उद्यम नहीं कर रहा है। अब जरा सोच, ऐसी स्थिति में परभव में तेरा क्या होगा ?

तू माया में फंसा, ममता से मारा गया, तृष्णा में रात-दिन बहा, आशाओं में उलझा रहा, देख तो पगले यह जीवन जा रहा है। विचार तो कर तेरा क्या होगा ?

विषयों के अपवित्र गड्ढे में तू गिरा, क्रोधादि कषाय के भयंकर जाल में फंसा। धर्म को हृदय में स्थान नहीं दिया। अरे भैया! सोच धर्म के बिना तेरा क्या होगा ?

देव गुरु धर्म को अच्छे ढंग से पहचानते नहीं, श्रद्धा के अभाव में उनकी उत्तम सेवा से वंचित रहता है, इसका तुझे ध्यान नहीं। आगे-पीछे का विचार तो कर, पर-भव में तेरा क्या होगा ?

कंचन व कामिनी इन दोनों को जीवन का आदर्श माना। इन्हीं के पीछे अपनी जीवन शक्तियों को स्वाहा किया। प्रभु बताये श्रेष्ठ तत्त्वों को जानने-मानने व जीवन में परिणत करने के लिये तू कभी विचार ही नहीं करता, बता तेरा क्या होगा ? पांचों इन्द्रियों की पराधीनता में फंसकर, मौज-शौक में लीन बनकर अनेक कार्यों में जाने-अनजाने बंध जाता है अरे! इन्द्रियों के गुलाम तेरा क्या होगा ?

---

## तब तू क्या करेगा ?

हे बुद्धिमान मानव जरा सोच। जब शरीर रोगों से घिर जायेगा। अपने प्रियजनों के अनेक प्रकार के उपचार, उपाय निष्फल हो जायेंगे। वैद्य, डॉक्टर, हकीम आदि अपने अंतिम उपायों की आजमाइश कर हाथ खींच लेंगे। सारे संबंधी रोगे व बिलखने लगेंगे। अंतिम घड़ियाँ सामने होगी तब तू क्या करेगा ? उस समय कुछ नहीं कर पायेगा।

श्वासों में जब रूकावट होने लगेगी, नाड़ियों की गति बदल रही होगी। दृष्टि पथरा जायेगी। रक्षण करने वाला कोई नहीं होगा, तब तू क्या करेगा ?

पाप की पोटली बांधकर पैदा किये धन के भंडार, बड़े-बड़े बंगले, बगीचे, कारखाने, दूकानें आदि सभी से एक क्षण में जुदा होने का समय आयेगा, तब तू क्या करेगा ?

माथे टाट पड़ेगी, कानों से कम सुनाई देगा, आंखों से दिखना कम होगा, नाक से पानी टपकेगा। मुँह से लार टपकेगी। खांसी से छाती भर जायेगी। हाथ-पैरों की शक्ति क्षीण हो जायेगी, लकड़ी के सहारे बिना चलना मुश्किल हो जायेगा। सभी धुतकारने लगेंगे, सर्वथा पराधीन बन जायेगा, जीवन खारा हो जायेगा, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जायेगी। बिना पुण्य के जीवन को ये सब दुःख भोगने पड़ते हैं। उन दुःखों से छूटने के लिये मरने की इच्छा का प्रसंग आयेगा- तब तू क्या करेगा ?

अरे विचारशील प्राणी! यह सब होता हुआ तू दुनियाँ में हमेशा देखता है। अच्छे भले लोगों की ऐसी स्थितियाँ बन जाती है। जवानी के जोश में व धन के मद में झूलने वालों के इस जन्म में भी बुरे हाल होते नजरों देखे हैं। तेरी यह दशा नहीं होगी, ऐसे गलत विश्वास में भूलकर कभी मत बैठना।

जब-जब ऐसे विषम प्रसंग बने, उस समय दीनता न आये, रोना न पड़े। अशांति के समय में शांति बनी रहे, इसके लिये अभी से अपनी आत्मा को जगा लें। सावधान बन जा, जागृत बन जा।

पानी आने से पहले पाल बांध लेने वाला व्यक्ति समझदार समझा जाता है। पाल बांधी नहीं और पानी भर गया, फिर कुछ नहीं होगा। फिर पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत। फिर पछताने से कुछ नहीं होगा। सब मन की मन में रह जायेगी। सोचा हुआ पूरा कब करेगा ? तुम्हारे सारे मनोरथ मिट्टी में मिल जायेंगे। आशा से निराश होना पड़ेगा। उस समय पश्चाताप व संताप का पार नहीं होगा। अपनी मिली हुई शक्तियों का सदुपयोग समय रहते कर लें। प्रमाद नींद से जागरण में आ जा। कब तक सोता रहेगा। सद्कर्मों का भाता साथ में बांध ले। फिर कोई भी अवस्था तुझे नहीं सतायेगी। तेरे जीवन में सदा सुखशांति रहेगी। तू भरपूर आनन्द व सुख का स्वामी बन जायेगा। आत्म तारक धर्म क्रियाएँ, चिंतन-मनन, ध्यान व तत्त्वज्ञान का अभ्यास-यही सच्चे आनन्द देने वाले साधन हैं। हे आत्मन्! तू इन्हीं का आश्रय ले, तभी तुझे सच्चा सुख व सच्ची शांति मिलेगी।

## अब समझ जाय तो अच्छा

अय चिंदानंद घन आत्मा। मोह की मदिरा में मस्त बनकर मूर्खतापूर्ण कार्य तूने बहुत किये, अब समझ जाय तो अच्छा।

संसार के जितने भी संयोग होते हैं, वे सब एक दिन वियोग में बदल जाते हैं, जो भी बाहर में वस्तु, व्यक्ति आदि हमें मिलते हैं, वे सब यहीं रह जाते हैं। बाहर की वस्तुओं को अपना मानना और उनमें मोह करना यहीं सबसे बड़ा अज्ञान है। यहीं संसार में आकुलता और व्याकुलता पैदा करता है। जीव को इस संसार में जो-जो दुःख मिलते हैं उन सबका एकमात्र कारण संयोग है। पर वस्तु को अपना मानना ही दुःख का मूल कारण है। अतः हे जीव! अब समझ जाय तो अच्छा।

तू इन्द्रियों का गुलाम बना, मन को खुला छोड़ा, व्यसनों से तूने प्यार किया। विषयों की मौज में तू मस्त बना। सच्चा सुख पाने का लेश मात्र भी उद्यम नहीं किया। पग-पग पर पराधीन बना। पराधीन सपने सुख नाहि। इन्द्रियों और मन का गुलाम व्यक्ति जीवन भर दूसरों की दासता करता है और अंतिम क्षणों में कुत्ते की मौत मरता है। हे आत्मन्! अब भी समझ जाय तो अच्छा।

बचपन में मां, जवानी में पत्नी और बुढ़ापे में बच्चे व कुटुम्बी याद आये। पर प्रभु को कभी तूने याद नहीं किया। आत्मा को खोजने के लिये अन्तर्मुख नहीं हुआ। अन्तर दृष्टि के बिना तू बहुत भूला-भटका, दुःखी व हैरान हुआ। ओ कायर जीव! अब भी समझ जाय तो अच्छ।

उन्मत्तता को छोड़ दे। उल्टी राह से पीछे लौट। सुल्टी राह पकड़। प्रभु का प्यारा बन। संत समागम की शोध कर। सच्चे सद्गुरु का आश्रय ले। जिनवाणी का रहस्य समझ। पापों से डर। सदाचार का सेवन कर। तत्त्वज्ञान पैदा कर। आत्म रसिक बन। बार-बार याद दिलाती हूँ अब भी समझ जाये तो अच्छ।

मृत्यु निश्चित है। काल गति की किसी को खबर नहीं। यदि मृत्यु का स्मरण सदैव बना रहता है तो हम जीवन में पाप नहीं करते। पूर्व में बांधे पुण्य से अभी लीला लहरें करता है। पुण्य खत्म होगा, उस समय तुझे जबर्दस्त धक्का लगेगा। सभी सुखों को छोड़कर मरना निश्चित है, फिर भी नश्वर पदार्थों के पीछे कितना दौड़ता है। आत्मा के लिये कुछ भी नहीं करता है। अरे जीव! अब भी समझ जायें तो अच्छ है।

दुर्लभ मनुष्य जन्म मिला। परमात्मा के पास पहुँचने के सारे साधन मिले, फिर भी अपनी अज्ञानता के कारण भूला भटकता है। प्रभु से दूर-दूर होता है। अनन्तकाल से दुःख के गड्ढे में डूब रहा है। दुःख के मार्ग से हटकर, परमशान्ति के पथ पर आ। अरे मूर्ख मन अब भी समझ जाय तो अच्छ।

तीन काल में भी धर्म के बिना सुख शांति नहीं मिलेगी। एक जीवन यदि धर्म की आराधना में लगा देगा तो सदा-सदा के लिये सुखी बन जायेगा। अनन्त बार देह के लिये आत्मा का उपयोग किया। मात्र एक बार आत्मा को जगाने का पुरुषार्थ कर लें। मोक्ष हथेली में है, तू आराधक बन। अपने जीवन को साधकर मंगलमय बन जा।

---

## तब तेरा कौन होगा?

इस नश्वर शरीर में अनेक रोगों का आक्रमण होगा। स्नेही संबंधियों के सारे उपचार बेकार हो जायेंगे एवं बड़े-बड़े डिग्रीधारी डॉक्टर, वैद्य आदि उपचार करते-करते निष्फल हो जायेंगे। निकट के साथी-संबंधी, रोते हुये चेहरे से तुझे देख-देख कर आंसू निकालेंगे उस समय तेरा कौन होगा ?

अन्तर मन बैचने हो रहा होगा। श्वासोच्छ्वास की गति अटक रही होगी। कोई अकथनीय दशा चल रही होगी। चारों ओर से निराशा के स्वर सुनने को मिलेंगे। तेरे सारे मनसूबे मिट्टी में मिल रहे होंगे, उस समय तेरा कौन होगा ?

पाप की परवाह किये बिना अनेक कुकर्माँ को करके, पैदा किये धन, मकान, बगीचे, मोटर, महल, मीलें, आदि मन-भावन वस्तुएँ हमेशा-हमेशा के लिये अचानक जुदा हो जायेंगी, तब तेरा कौन होगा ?

माता-पिता, भाई-भगिनी, स्त्री, पुत्र आदि प्यारे से प्यारे संबंधियों के आनन्द दायक सहवास को छोड़ने का अचानक अवसर आयेगा, तब तेरा कौन होगा ?

मान चाहे मत मान, तीन दुश्मन तेरे पीछे पड़े हुए हैं- रोग, बुढ़ापा और मृत्यु। इन तीनों में से किसी एक के झपाटे में भी तू आ गया तो तेरा सारा अभिमान चूर-चूर हो जायेगा। तेरी सारी मेहनत व कमाई धरी रह जायेगी। अन्तर दिल से सोच, उस समय तेरा कौन होगा ?

ऐ बुद्धि के भंडार! इन सबका जवाब तुझे मोह की बेहोशी में न सूझता हो तो ज्ञानी कहते हैं कि उस समय तेरा एक मात्र साथी धर्म ही होगा। दूसरी कोई शरण तेरे काम नहीं आयेगी। अतः जीवन को उज्ज्वल बना लें। रोग के समय आर्त्तध्यान भुला दें। बुढ़ापे में धुतकारें जाने का समय न आवे और समाधि के साथ मरण हो, ये सारे

समाधान धर्म-चिन्तन में है। उस धर्म का मर्म सद्गुरु के हृदय में रहा हुआ है, अतः सद्गुरु की खोज कर। उनसे जिनवाणी का मर्म समझकर उनके चरणों में पूर्ण समर्पित बन जा।

जब जागे तभी सवेरा। चित्त से चेतकर अपनी उत्तम कुल मर्यादा की रक्षा करते हुये सच्चे धर्म की आराधना कर ले, वरना कहीं पीछे पछताना न पड़े।

## बारह भावनाओं का चिंतन

इस भीषण संसार रूप वन में सुख की लालसा वश हमारी आत्मा इधर से उधर जन्म-मरण के चक्र में भटक रही है। बार-बार वह बंधन से मुक्ति पाने का प्रयत्न करती है, पर यह मोह का बंधन ही उसके लिये बाधक बन जाता है। मोह से अंधी बनी आत्मा सुख पाना चाहती है, परन्तु मोहान्धता के कारण ज्यों-ज्यों प्रयत्न करती है, त्यों-त्यों दुःख के महान् गर्त में डूब जाती है। इस भीषण संसार में सुख की चाह में भटकते-भटकते आत्मा को अनन्तकाल बीत गया, पर सुख उसे आज तक नहीं मिला। ज्ञानी कहते हैं कि हे मानव! यदि तुझे सुखी बनना है तो तू इन अनित्यादि भावनाओं का चिंतन-मनन कर व पापों से मुक्त बन जा, तभी तुझे सच्चा सुख प्राप्त होगा।

ये भावनाएँ वैराग्य प्रधान हैं। इनके चिंतन से हमारे जीवन में भी वैराग्य भाव जगता है। पद-पद पर निर्वेद रस झलकता है। इनका नित्य चिंतन-मनन करने से हमारे उत्तम विचार बनते हैं। मोह की व्याकुलता कम होती है। आत्मा का संसार में भटकने का मुख्य कारण मोह है। आज जितने भी दुःख, क्लेश, भय, चिंता एवं शोक दिखाई देते हैं, उन सबकी उत्पत्ति मोह से होती है। मोह से ही तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से संसार की वृद्धि होती है। अतः संसार के समस्त दुःखचक्र का मूल मोह है। जिसे मोह नहीं, ममता नहीं, उसके सारे दुःख समाप्त हो जाते हैं। अतः अनित्यादि बारह भावनाओं के स्वरूप को समझाने का यहाँ प्रयत्न किया गया है।

### बारह भावना

राजा, राणा, छत्रपति, हाथिन के असवार।  
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।1।।  
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।  
मरती विरियां जीव को, कोई न राखनहार।।2।।  
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।  
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यों छान।।3।।  
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।  
यों कबहुं या जीव को, साथी सगो न कोय।।4।।  
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।  
घर संपत्ति पर प्रकट ये, पर है परिजन लोय।।5।।  
दीपै चाम चादरमढ़ी, हाड़ पिंजरा देह।  
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन-गेह।।6।।  
जगवासी घूमें सदा, माँह नींद के जोर।  
सब लुटे नहीं दीसता, कर्मचोर चहुं ओर।।7।।  
मोह नींद जब उपशमे, सद्गुरु देय जगाय।  
कर्मचोर आवत रूके, तब कुछ बने उपाय।।8।।

ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर ।  
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पुरब चोर ॥  
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार ।  
प्रबल पंच-इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार ॥9॥  
चौदह राजु उतंगनभ, लोक पुरुष संठान ।  
ता में जीव अनादि ते, भरमत है बिन ज्ञान ॥10॥  
धन-जन कंचन-राजसुख, सबहि सुलभ करजान ।  
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥11॥  
वाचे सुर तरु देय सुख, चिंतित चिंता रैन ।  
बिन याचे बिन चितिये, धर्म सदा सुख देन ॥12॥

## अनित्य भावना-नश्वरता का बोध

संसार की हर वस्तु अनित्य है। इस जगत में जितने भी पौद्गलिक पदार्थ हैं वे सब अनित्य हैं। यह शरीर, धन, पुत्र, पति, पत्नी, माता-पिता, परिवार, घर, महल जो भी वस्तुएँ व संबंध हमें मिले हैं, वे सब अनित्य हैं। क्षण भंगुर हैं, व नाशवान हैं। जितने भी पदार्थ हमारे भोग उपभोग में आते हैं, वे सब क्षणिक हैं, नश्वर हैं, अनित्य हैं अस्थिर हैं, इसलिये उन पर ममता, आसक्ति व मूर्च्छा करना मूर्खता है। यहाँ कुछ भी शाश्वत व सदा रहने वाला नहीं है।

संसार अनित्य है। संसार के पदार्थ अनित्य है। जीवन अनित्य है। वैभव विलास अनित्य है। भोग के सुख अनित्य हैं। संसार में दिखाई देने वाले सभी पदार्थ अनित्य हैं। आज जिस शरीर, यौवन, रूप, संपत्ति और सत्ता में हम मशगूल बन रहे हैं, वे सब क्षणभंगुर हैं। अनित्य हैं। चंचल हैं। फिर हम क्यों आसक्त बन दुःखी होते हैं?

हे आत्मन्! तू समझता है यह घर मेरा है। यह शरीर मेरा है। बड़ा सुन्दर है। मेरा आधार है। इसकी सार संभाल करना मेरा कर्त्तव्य है। इसलिये हर क्षण इसकी रक्षा करने को तत्पर रहता है। मेरा शरीर सदा निरोग व हृष्ट-पुष्ट बना रहे, इसमें किसी प्रकार का रोग नहीं आये, बीमार न हो, बुढ़ा न हो, इसलिये इसका हर समय ध्यान रखता है। पर ज्ञानी कहते हैं, इस शरीर के रोम-रोम में रोग छिपे हुए हैं, जरा सी असावधानी हुई कि शरीर में छिपे रोग बाहर आ जाते हैं। शरीर व्याधि मन्दिरम्। शरीर को रोगों का घर कहा है। फिर भी तू इससे मोह करता है? यह तेरा जीवन जिस पर तू इतना मोहित हो रहा है। यह तो जलती आग में पड़े हुए घास के पूले के समान है। यह कितने दिन रहेगा। काल तो कुठार लेकर सिर पर खड़ा है और तू न जाने क्या समझ कर अपनी अमरता के सपने संजो रहा है।

शांत सुधारस में भी कहा गया है- मनुष्य का जीवन हवा के झोंकों से लहराती हुई लहरों के समान चंचल है। संपत्ति विपत्तियों से घिरी हुई है। सुख के साथ दुःख लगा हुआ है, जीवन का हर नाटक दुखान्त है। यौवन का उन्माद कुछ और ही होता है। यौवनावस्था मनुष्य को दिवाना बना देती है। यौवन में एक जोश होता है, अहंकार की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। यौवन में भूला व्यक्ति सदा-सदा के लिये भटक जाता है। उस समय अनित्यता को समझना अत्यन्त कठिन होता है। वासना से निवृत्ति के लिये यह जीव पुरुषार्थ नहीं करता, परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि यह यौवनावस्था सदा काल रहने वाली नहीं है। चढ़ती जवानी में व्यक्ति पागल बन जाता है, उस समय वह किसी की नहीं सुनता। सबके ऊपर अपनी हुकुमत स्थापित करना चाहता है, परन्तु जरा सोचें यह यौवन कितने दिन का है?

उसका पीछा करती है वृद्धावस्था। उस समय बाल सफेद हो जाते हैं। आंखों का तेज घट जाता है, चेहरा मुझ्रा जाता है, पैर लड़खड़ाने लगते हैं, हाथ धूजने लगते हैं, दांत गिर जाते हैं, वाणी अस्पष्ट हो जाती है, फिर देखों उसकी हालत। बच्चों के लिए बूढ़ा मात्र तमाशा बन जाता है। युवकों के लिये तिरस्कार का पात्र बन जाता है, फिर न संतान से प्रेम मिलता है, और न पत्नी से सहानुभूति। यौवन के कुकर्मा का तीव्र कटुफल अनुभव करता है। बुढ़ापा शरीर की सारी शक्ति का शोषण करता है। जरा से ग्रस्त व्यक्ति की आजकल कोई सेवा नहीं करता। उसके पास बैठना कोई पसन्द नहीं करता। वाह रे बुढ़ापा। फिर भी आश्चर्य है कि खाने की, पीने की, भोगने की तथा एशो आराम की वासनाएँ परेशान करती है। जीवन पर्यन्त इन्द्रिय सुखों के पीछे दौड़ा, फिर भी तृप्ति व संतोष कहाँ? रोता है, झूरता है, दुःखी होता है। जीवन में जब तक पुण्य का उदय रहता है, तब तक सब सुखद संयोग प्राप्त होते हैं, लेकिन जैसे ही पुण्य बल क्षीण होता है, सब सुविधाएँ नष्ट हो जाती है। पुण्य का जब तक संयोग रहता है, सुख संपत्ति दौड़कर आती है। पुण्य क्षीण होने पर अपने भी पराये व प्रतिकूल बन जाते हैं।

अतः हे आत्मन्! संसार की अनित्यता का विचार तो कर। जिस प्रकार खिला हुआ फूल मुरझा जाता है। अंजलि का जल बूंद-बूंद टपक कर समाप्त हो जाता है। संध्या की लाली अंधेरे में बदल जाती है, इसी प्रकार बचपन, यौवन, शरीर की सुन्दरता, सत्ता व संपत्ति आदि सब अस्थिर एवं नाशवान हैं। तू इनसे ममत्व हटा। जरा विचार तो कर। जिसके साथ हमने क्रीड़ाएँ की, जिनके साथ प्रेम भरी बातें की, जिनके साथ रहे, उन्हें भस्मसात होते देखते हुये भी हम निश्चित होकर खड़े हैं। हमारे ऐसे प्रमाद को बार-बार धिक्कार है। हे मूढ़ आत्मन्! अपने स्वजन के मोह में तू इतना मुग्ध बना, किन्तु जरा विचार कर। जिसके साथ तूने अपना बचपन बिताया जिसके साथ तूने नाना प्रकार के खेल-खेले, उन सब परम प्रिय दोस्तों को भी श्मशान में राख होते नजरों से देखा, उनकी शव यात्रा में भी तू शामिल हुआ। अनेकों की चिता में आग भी तूने अपने हाथों से प्रज्वलित की। उनके देह विनाश को तूने प्रत्यक्ष में देखा। परन्तु फिर भी आश्चर्य है कि तू अपनी ही मौत को भूल गया। अनेकों को मरते हुए देख कर भी तुझे अपने जीवन की अनित्यता का बोध नहीं हुआ। अपने बचपन के कई संगी साथी को मौत के मुंह में जाते देखकर भी तुझे इस संसार से किंचित भी विरक्ति नहीं हुई।

इस प्रकार अनित्य चिंतन से मोह व ममता टूटती है। आत्म बोध जागृत होता है कि ये सब वस्तुएँ जिन्हें मैं देखकर, खा कर सूँघकर प्रसन्न होती हूँ, वह सब अनित्य है, नाशवान है। आज जिसके पास धन का खजाना है वह कल दर-दर का भिखारी बन सकता है। चक्रवर्ती सम्राट का वैभव भी स्थिर नहीं रहा। उनका बल, संपत्ति, ऋद्धि-सिद्धि भी उनको मौत से बचाने में समर्थ नहीं हुई। ऐसे बलिष्ठ ऋद्धि सम्पन्न व्यक्तियों का भी आज कोई अता-पता नहीं रहा, तो हम जैसे साधारण मनुष्यों की औकात ही क्या है?

अतः ज्ञानी कहते हैं कि ये जीवन अनित्य व क्षणभंगुर है। दूसरों की मौत देखकर अपनी मृत्यु का दर्शन करों। जीवन की अनित्यता को समझकर प्रमाद का त्याग करों। कारण कि मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षण अत्यन्त ही कीमती है। महान् पुण्य के उदय से यह श्रेष्ठ जीवन मिला है, यह व्यर्थ न जायें। हमें जल्दी से आत्म-कल्याण के पथ में जागरूक बन जाना चाहिये।

ज्ञानी हमें बार-बार समझाते हैं कि संसार में आकर्षण की वस्तु भी क्या है? जिसे देखों व जिससे प्रेम करों अथवा प्रेम दो, वे सभी वस्तुएँ क्षण विध्वंसी हैं। या तो हमें उनको छोड़कर जाना पड़ता है, या वे हमें छोड़कर चले जाते हैं। हर संयोग के ऊपर वियोग की नंगी तलवार लटक रही है। इष्ट वस्तु का संयोग व अनिष्ट का वियोग की चाहना, यहीं तो संसार का मूल है। जिन-जिन पदार्थों का हमें आकर्षण है, जिनके बिना हमें अपनी जिन्दगी सूनी-सूनी लगती है, जिनके प्रति हम अपना स्नेह प्रदर्शित करते हैं, उन चेतन-अचेतन पदार्थों के स्वरूप का जरा

विचार तो करें। संसार में जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सब नष्ट होता है। जन्म के बाद मृत्यु, युवावस्था के बाद वृद्धावस्था अनिवार्य रूप से आती है। धन, बंधु, पुत्र, मित्र, सौन्दर्य, शक्ति, पद सब अनित्य हैं, नाशवान हैं, क्षणिक हैं। शाश्वत केवल आत्मा या परमात्मा है। आत्मा नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, ज्ञानमय है, अक्षय सुख का भंडार है। उस सुख का कितना ही भोग किया जाय, वह कभी क्षय होने वाला नहीं है। जो आत्मा के स्वरूप सागर में डूब गया, उसने अक्षय सुख को प्राप्त कर लिया। वह संसार रूपी कीचड़ में रहते हुए भी कमल की तरह सर्वथा अलिप्त रहता है। उसे पुत्र की मृत्यु नहीं रुला सकती। शारीरिक पीड़ा दुःखी नहीं कर सकती। उसे धन या वस्तु का वियोग कभी भी दुःखी नहीं करता। आत्म की मस्ती कुछ अलग ही होती है। जिसने आत्मा के सच्चिदानंद स्वरूप का आस्वादन कर लिया, उसे भोग-सुख, दुखरूप ही लगते हैं। इसलिये हमें अनित्य वस्तुओं के पीछे दौड़ धूप न कर शाश्वत सुख देने वाले मोक्ष में अपने कदम बढ़ाने चाहिये।

## अशरण भावना-अशरणाता का बोध

इस विराट् संसार में आत्म के लिये शरणभूत एक भी स्थान नहीं है। संसार की कोई भी वस्तु धन, संपत्ति, प्रेम, स्नेह, ममता, मनुष्य को अपनी पीड़ा, वेदना व मृत्यु से नहीं बचा सकती। कितना ही बड़ा परिवार हो, कितना ही बलवान शरीर हो, कितनी ही धन-संपदा हो। चाहे किसी भी देवी-देवता की उपासना की जायें, परन्तु मृत्यु पर किसी का जोर नहीं चलता। समय आने पर सबको मरना ही पड़ता है। इस कालचक्र से बचाकर शरण देने वाला कोई नहीं है। कोई किसी की शरण नहीं, कोई किसी का सहारा नहीं, कोई किसी का नाथ नहीं। सब अनाथ हैं। अशरण हैं। केवल एक दूसरे को आश्रय भूत समझने की हमें झूठी भ्रान्ति है। हमारा यह अज्ञान ही हमें दुःखी करता है।

इस जीव को थोड़ी सी समृद्धि या कोई प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है तो वह उसमें इतना आसक्त बन जाता है कि अपनी मृत्यु तक को भूल जाता है। मानव की यह कैसी दुर्दशा है कि वह किसी वैभव को पचा नहीं सकता। धन मिल गया, धन का अभिमान। रूप मिल गया, रूप का अभिमान। बल मिल गया, बल का अभिमान। सत्ता मिल गई, सत्ता का अभिमान। यहाँ तक की ज्ञान मिल गया ज्ञान का अभिमान। मानव अभिमान के शिखर पर तभी तक अलमस्त रहता है, जब तक यमराज की नजर में नहीं आता। यमराज की नजर में आते ही उसके होश हवास उड़ जाते हैं, तब वह अत्यन्त दीन बन जाता है। जब कोई प्राणी यमराज के फंदे में फंसने लगता है तो उसका सारा अभिमान चूर-चूर हो जाता है, उस का तेज गलने लग जाता है। उसका धैर्य व पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है। उसकी कंचन जैसी काया क्षीण हो जाती है। उस समय सभी स्वजन पराये बन, देखते रह जाते हैं। बल्कि उसकी सारी अमानत व धन को अपने कब्जे में करने लग जाते हैं। ऐसा यह असार संसार है।

संसार में मां के हृदय में बच्चों के प्रति, पिता के हृदय में बच्चों के प्रति, पत्नी के हृदय के पति के प्रति, बहिन के हृदय में भाई के प्रति प्रेम देखने को मिलता है, परन्तु गहराई से देखने पर पता चलता है कि वह सब प्रेम स्वार्थ जन्य ही होता है। जब तक स्वार्थ की सिद्धि होती रहती है, तभी तक एक दूसरे को अपना समझते हैं, उनसे प्रेम व स्नेह प्रदर्शित करते हैं, पर ज्यों ही स्वार्थ सिद्ध हो जाता है, वे ही व्यक्ति एक दूसरे का मुंह भी देखना पसन्द नहीं करते। जब-जब व्यक्ति के स्वार्थ को ठेस पहुँचती है, वह नाराज होकर आंखें फेर लेता है। बचपन में बच्चा हर क्षण मां-मां की रट लगाता है और वही प्रिय बच्चा जब यौवनावस्था में आता है तो मां कहना छोड़कर रात-दिन पत्नी के आगे-पीछे घूमता है। अपनी सारी शक्ति व पुरुषार्थ अपने बच्चे व पत्नी को प्रसन्न रखने में लगाता है, एवं मां को भूल जाता है। बुढ़ापे में वहीं व्यक्ति बच्चों की ओर कातर दृष्टि से देखता है। वह चाहता है कि बच्चे मेरे पास बैठें,

मेरी सेवा करें, मेरे सुख-दुःख की बातें सुनें। पर उस समय बिना पुण्यवानी के कोई उसके पास भी नहीं फटकता। वह क्या करें, बेचारा आर्त्त-रौद्र ध्यान करके नये-नये कर्मों का उपार्जन कर दुःखी होता है, रोता है, बिलकता है उसे सान्त्वना देने वाला, दो घड़ी बैठ कर उसके मन के दुःख को बांटने वाला कोई नहीं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति हतोत्साह हो जाता है। क्या धर्मध्यान करें, कैसे करें? पैर लड़खड़ाते हैं, हाथ धूजते हैं, कमर दर्द से परेशान अच्छी तरह से बैठकर प्रभु का नाम व प्रभु की भक्ति भी नहीं कर सकता, और फिर मृत्यु का कोई भरोसा नहीं। वह कभी भी आ सकती है। मृत्यु के लिये किसी भी अवस्था में प्रतिबंध नहीं। वह गर्भावस्था में भी आ सकती है। उसके आगमन की कोई तिथि, दिन, वार, समय व घड़ी पर प्रतिबंध नहीं। मृत्यु से बचने के लिये कदाचित कोई वज्र का महल भी बना दें तो भी वह मृत्यु से नहीं बच सकता। मृत्यु से बचने के लिये प्राणी यमराज की ओर कातर दृष्टि से देखता है, दया की भीख भी मांगे तो भी वह उन पर लेश मात्र भी दया करने को तैयार नहीं। वह तो अत्यन्त क्रूर है, निर्दयता का तांडव नृत्य करने में उसे किसी प्रकार की शर्म नहीं। वह छोटे-बड़े या धनी-निर्धन का भेद नहीं रखती उसकी नजरों में सब बराबर है।

मोह से तेरा कमाया धन यहीं पड़ा रह जायेगा।

प्रेम से अति पुष्ट किया, तन जलाया जायेगा ॥

विद्या, मंत्र, तंत्र, देवी-देवता कोई भी हमें मृत्यु से बचाने में समर्थ नहीं होते।

क्या धन हमें मृत्यु से बचा सकता है? नहीं

क्या पुत्र हमें मृत्यु से बचा सकता है? नहीं।

क्या डॉक्टर हमें मृत्यु से बचा सकता है? नहीं।

विराट् सैन्य बल, प्राणों से प्रिय स्वजन, दास-दासी कोई भी हमें मृत्यु से बचाने में समर्थ नहीं। जब काल रूपी सिंह झपटता है तो माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र,पत्नी आदि सब एक ओर खड़े देखते रहते हैं। बेबस रोते व बिलखते हैं। लेकिन काल के मुंह में जाते उस प्राणी की कोई रक्षा नहीं कर सकता। रायप्पसेणी सूत्र में प्रदेशी राजा का वर्णन आता है। सूर्य कान्ता रानी उससे बहुत प्रेम करती थी, राजा भी रात-दिन उसके प्रेम में आसक्त था। केशी श्रवण के उपदेशों से जब राजा प्रदेशी धर्म ध्यान में लीन रहने लगा तो रानी उससे अप्रसन्न रहने लगी और वही प्राणों से प्रिय पत्नी स्वार्थ व भोगों में कसर पड़ते ही अपने पति के भोजन में जहर डालकर उनके प्राण ले लेती है। अपने स्वार्थ में बाधक बनने पर कंस व कौणिक ने अपने ही पिता को जेल में बंद कर दिया। संसार में से एक नहीं अनेकानेक उदाहरण प्रतिदिन घटित होते हैं कि अमूक पिता ने पुत्र को, माता ने पुत्री को, भाई ने भाई को, पति ने पत्नी को मार डाला। उनकी नृशंस हत्याकर डाली। अतः ज्ञानी कहते हैं कि ये संबंध कांच की चूड़ियों की तरह कच्चे हैं। जरा से झटके से टूट जाते हैं। बिखर जाते हैं। ऐसे क्षणिक संबंधों को अपना मानना, उन्हें रक्षक व सहारा मानना हमारी बहुत बड़ी भूल है।

संसार में प्रायः देखने में आता है कि प्रजा शक्तिहीन राजा को राजगद्दी से उतार देती है। पुत्र बड़ा होने पर माता-पिता को भूल जाता है। पक्षी फलहीन वृक्ष को छोड़कर उड़ जाते हैं। भोजन के बाद अतिथि घर को भूल जाता है। विद्या पा लेने के बाद शिष्य गुरु को भूल जाता है। इस प्रकार जिधर भी नजर फैलाते हैं, चारों तरफ स्वार्थ का ही बोलबाला है। जब तक स्वार्थ रहता है तब तक यह हमें प्राणों से भी प्यारा है और स्वार्थ निकल जाने के बाद वहीं हमें फूटी आंख नहीं सुहाता है। मतलब निकल जाने के बाद कोई पहचानता भी नहीं। वर्षों का प्रेम क्षणभर में टूट जाता है। सुख के साथी सभी बनते हैं और दुःख में भागीदार बनने के लिये कोई तैयार नहीं होता। धन-वैभव आदि की समृद्धि होने पर भी जब शरीर रोगों से घिर जाता है, तब स्वयं को ही पीड़ा भोगनी पड़ती है। उस दर्दी के दर्द को

कौन बांटता है। संसार का स्वभाव ही है कि सुख में हर कोई भागीदार बन सकता है, पर दुःख में कोई साथ नहीं निभाता। जहाँ उत्पत्ति है वहाँ विनाश भी जुड़ा है। जन्म के साथ ही देह की जीर्णता प्रारम्भ हो जाती है। वृद्धावस्था जीवन को जीण-शीर्ण बना देती है। जीवन को नीरस व खारा बना देती है। ऐसी जरावस्था व मृत्यु का कोई शिकार बनना नहीं चाहता। परन्तु उसे रोकने में बताइये कौन समर्थ? अर्थात् कोई नहीं। अतः जन्म, जरा, मृत्यु, भय, रोग, शोक, वेदना से पीड़ित इस संसार में जीवात्मा के लिये शरण भूत चार ही पदार्थ हैं- 1. अरिहंत, 2. सिद्ध, 3. साधु, 4. केवली प्ररूपित दयामय धर्म। जिनेश्वर भगवान के वचन, उनका उपदेश और उनके द्वारा बताया गया धर्म की हमारे लिये शरणभूत बनकर हमारी रक्षा कर सकता है। जहाँ हम शांति व निर्भयता पूर्वक रह सकते हैं। धर्म परलोक में भी हमारे साथ जाता है तथा वहाँ हमारे सुख में सहायक बनता है। वह दुःखों से हमारी रक्षा करता है। संसार में धर्म के सिवाय सब नश्वर हैं, अशरण हैं। अतः ममत्व के बंधन को तोड़ कर धर्म की शरण में आने से ही मुक्ति के सुखों का अमृत रस हमें मिल सकता है। जन्म-जन्म के दुःखों से छूटकारा पाना हों तो हमें धर्म की शरण स्वीकार करनी ही होगी।

हे जीव! मरना तो तुम्हें अवश्यभावी है। जिसने जन्म लिया वह अवश्य मरेगा। उसे कोई बचाने में समर्थ नहीं। परन्तु मेरा मरण राग-द्वेष रहित, अन्तर भावों में लीन रहते हुये हो। जिससे मुझे निकट भविष्य में जन्म-मरण आदि सभी दुःखों से छूटकारा मिल सकें। मैं सभी दुःखों का अंत कर अक्षय सुख को प्राप्त कर सकूँ। शुद्ध धर्म को प्राप्त कर सकूँ। शुद्ध धर्म की शरण ही मेरी रक्षा में समर्थ है, ऐसा बार-बार चिंतन करना।

## संसार भावना-संसार के दुःखों का बोध

जन्म दुःखं, जरा दुःखं, रोगाणि मरणाणि च।

अहो दुःखो हु संसारो, जन्थ कीसंति जंतवो ॥

जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है और मृत्यु दुःख है, वियोग दुःख है। जिधर देखों, उधर दुःख ही दुःख है अहो! यह संसार दुःखमय ही है, जिसमें यह जीव क्लेश पा रहा है। जहाँ जीव पीड़ा व दुःख का अनुभव करता है, वेदना का अनुभव करता है, यहीं तो संसार है।

संसार की वास्तविकता यहीं है कि यहाँ जो भी है वह किसी न किसी कारण से दुःखी ही है। कोई तन से दुःखी है, कोई मन से दुःखी है, तो कोई धन से दुःखी है। तीनों से सुखी कोई नहीं है। यह संसार जन्म, जरा, मरण आधि-व्याधि-उपाधि रूप दुःखों से भरा हुआ है। चारों ही गति में जन्म मरणादि दुःख लगे होने से इसका फल भी दुःख रूप ही है। यह संसार दुःख के अनुबंध वाला है। चार गति रूप इस संसार का कारण मिथ्यात्व व कषाय है। पाप कर्म के उदय से यह जीव कभी नरक में जन्म लेता है और वहाँ अनेकों दुःखों को सहता है। शास्त्र में कहा है- जो प्राणियों का घात करता है, झूठ बोलता है, दूसरों का धन हड़पता है, परनारी को बुरी नजर से देखता है, परिग्रह में अत्यधिक आसक्त रहता है, बहुत क्रोधी, मानी, कपटी व लालची होता है, कठोर वचन बोलता है, दूसरों की चुगली करता है, रात-दिन धन संचय में लगा रहता है, साधुओं की निंदा करता है, नीच व खोटी बुद्धि वाला है, कृतघ्नी है, बात-बात पर शोक तथा दुःख करना जिसका स्वभाव है, वह जीव मरकर नरक गति में जन्म लेता है। नरक गति की सभी वस्तुएँ दुःख को देने वाली व अशुभ होती है, क्योंकि वहाँ के क्षेत्र का ऐसा ही स्वभाव है। नरक की वेदना का आंखों देखा रोमांचक वर्णन आगम में राजकुमार मृगापुत्र ने अपने माता-पिता के सामने किया, जो कि एक भुक्तभोगी का सच्चा वर्णन है। उत्तराध्ययन सूत्र में मृगापुत्र नामक अध्ययन में उसका कुछ वर्णन इस प्रकार है-

“मैं नरक की कंटु कुंभियों में पकाने के लोह पात्रों में, ऊपर पैर व नीचा सिर कर प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हूँ।” ( 50 ), “महाभयंकर दावाग्नि के तुल्य मरुप्रदेश में, वज्र बालु का और कदम्ब बालुका में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ।” ( 51 ), “मैं इधर-उधर भागता और आक्रन्दन करता हुआ, काले तथा चित्तकबरे सूअर और कुत्तों से अनेक बार गिराया गया, फाड़ा गया और छेदा गया।” ( 54 ), “पाप कर्मों के कारण मैं नरक में जन्म लेकर अलसी के फूलों के समान नीले रंग की तलवारों से, भालों से और लोहे के दंडों से छेदा गया, भेदा गया और खण्ड-खण्ड कर दिया गया।”

“प्यास से व्याकुल होकर वैतरणी नदी पर पहुँचा “जल पीऊँगा” यह सोच ही रहा था कि छुरे की धार जैसी तीक्ष्ण जलधारा से मैं चीरा गया।”

“गर्मी से घबराकर मैं छया के लिये असिपत्र महावन में गया, किन्तु वहाँ ऊपर से गिरते हुये तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों से अनेक बार छेदा गया” ( 60 )

नरक में वैक्रिय शरीर होता है उसका स्वभाव ही ऐसा है कि काटा, टुकड़े-टुकड़े किया और फिर जुड़ गया। उनका शरीर पारे के समान बिखर कर फिर से जुड़ जाता है, वे काटने-छेदने-भेदने पर भी मरते नहीं हैं। नरक में परमाधामी देव मुझे अपने किये हुये पापों की याद दिला-दिला कर भाँति-भाँति से कष्ट देते।

तेज धारवाले छुरों से मैं अनेक बार काटा गया, टुकड़े -टुकड़े किया गया, छेदा गया, अनेक बार मेरी चमड़ी उतारी गई।

ऐसी तीव्र, प्रचण्ड, प्रगाढ़, घोर, अत्यन्त दुःस्सह, महा भयंकर और भीषण वेदनाओं का मैंने नरक में कई बार अनुभव किया।

तिर्यच गति के निगोद में जहाँ एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं, उनमें घोर वेदना और कितनी बिलबिलाहट होती है? अनन्तकाल तक जीव उसी एक योनि में दुःख भोगते रहते हैं एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करते रहते हैं। निगोद में एक जीव को मारे तो अनन्तजीव मर जाते हैं। वहाँ पर कष्ट भोगते-भोगते जीव स्थावर योनि में व फिर त्रस योनि में आता है। इस तरह जीव कष्ट भोगता-भोगता अकाम निर्जरा करता-करता ऊपर उठता है। तिर्यच गति में भी यह जीव भयंकर दुःख भोगता है। जीव-जीव का भक्षक बन आपस में ही एक दूसरे को खा जाते हैं। भूख की पीड़ा न सहने से कभी-कभी माता ही भक्षक बनकर बच्चों को खा जाती है। तिर्यच गति में पशु-पक्षियों को भयंकर पीड़ाएँ होती है। कोई भूख व प्यास से तो कोई सर्दी व गर्मी से व्याकुल होकर बैमोत मर जाते हैं। मांस, चर्बी, हड्डी, खून आदि के लोभ में पड़कर जीवित पशुओं को चीर दिया जाता है। गर्म-गर्म खोलते हुए पानी में डालकर जीवित पशुओं की चमड़ी उतारी जाती है। अहा! उस समय उन बेचारे मूक प्राणियों की कैसी हालत होती होगी। फिर बेचारे पशु तीव्र भूख व तीव्र प्यास से प्यासे होकर पेट की आग में जलते हुए बड़ा कष्ट पाते हैं। उन्हें भूख-प्यास की असह्य वेदना सहनी पड़ती है। सर्दी-गर्मी के दुःख सहने पड़ते हैं। बोझा ढोने पर भी ऊपर से कोड़ों की मार खानी पड़ती है। अनिच्छा और परवशता के कारण हमारी इस आत्मा ने भी कई बार ऐसे भयंकर दुःखों को नाना गतियों में सहन किया है।

अब मनुष्य गति में देखें। वहाँ भी दुःखों का पार नहीं। यहाँ जीव को नौ मास तक भयंकर गर्भावास की पीड़ा सहन करनी पड़ती है। थोड़ी सी दुर्गन्ध, थोड़ी सी प्रतिकूल हवा से आकुल-व्याकुल बन जाने वाला अहंकारी मानव यह क्यों भूल जाता है कि वह नौ मास तक अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त गर्भावास की सजा भुगत कर आया है। क्या मां के गर्भ में सुगन्धित फूलों की महक थी? क्या मां के गर्भ में डनलप व मखमल जैसे मुलायम गद्दे थे? कैसी दुर्गन्ध व संकड़ी काल कोठरी में यह जीव एक दो दिन नहीं, सवा नौ महीने औंधा लटक कर वेदना सहता रहा। जहाँ इस

जीव को कोई सुविधा नहीं, जहाँ न खिड़की, न बारी, न पंखा न ए.सी.। ओ हो कितने घिनौने स्थान में यह जीव रहकर आया है, किन्तु आज थोड़ी सी गंदगी, थोड़ी सी असुविधा थोड़ी सी गर्मी से यह जीव दुःखी अशांत व परेशान हो जाता है। गर्भ व प्रसव की वेदना सहन कर यह जीव किसी तरह बाहर आता है। बाहर आकर भी वेदनाओं का अंत कहाँ? यहाँ कोई सम्पन्न है तो कोई दरिद्र। कोई रोगी है तो कोई भोगी। किसी को जन्म से जीभ नहीं है तो कोई सुन नहीं सकता, कोई चल नहीं सकता तो कोई आंखों के बिना अंधा है। किसी के जन्मते ही माता-पिता मर जाते हैं। किसी को भूख मरना पड़ता है। इस संसार में हजारों तरह की असमानताएँ व विचित्रताएँ हैं। एक-एक प्राणी लाखों चिन्ताओं से घिरा हुआ रहता है। शरीर और मन की अनन्त-अनन्त वेदना यहाँ पग-पग पर खड़ी है। कहीं सुख है तो कहीं दुःख है। संसार में पुण्यशाली कहलाने वाले जीवों को भी हमेशा इच्छित पदार्थ प्राप्त नहीं होते। किसी के स्त्री नहीं तो किसी के पुत्र नहीं। पुत्र हो भी गया तो उसका शरीर निरोग नहीं। किसी का शरीर निरोग है तो संपदा चली जाती है। किसी के धन-धान्य-संपदा है तो जवान बेटा छोड़कर चला जाता है। किसी की स्त्री दुष्टा है तो किसी का पुत्र आज्ञाकारी नहीं, जुआ आदि दुर्व्यसनों में फंसा हुआ है। किसी की स्त्री उसे जवानी में छोड़कर परलोक सिधार जाती है। जो आज धनवान है, वह कल निर्धन बन जाता है। संसार का ऐसा ही नग्न रूप है। अस्पताल में जाने का काम कभी पड़ता है तो देखते हैं, बेचारे दर्दी दर्द में कहराते हैं। किसी का पैर कटा है तो किसी का हाथ, कोई केन्सर से भयभीत है तो, कोई हृदय रोग से तड़फ रहा है तो कोई डायबिटीज से परेशान है। कोई जल गया है तो किसी के अंग कट गये हैं, कितने दुःख है इस संसार में? दुनिया में जितनी भी पीड़ाएँ या दुःख हैं, उन सबको हमारी आत्मा ने भी इच्छा-अनिच्छा से अनेक बार भोगा है। इन सारे ही दुःखों को सहन किया है। सारी वेदना परवशता में भोगी है। हमारी आत्मा ने भी गजसुकुमार मुनि की तरह धधकते अंगारों को सहन किया है। खंधक मुनि की तरह कभी चमड़ी उतरवाई है। महावीर प्रभु की तरह कष्टों को सहन किया है। पर उन सारी वेदनाओं को रो रोककर, दुःखी होकर, परवशता में सहा है, पर इन महान आत्माओं ने समझपूर्वक समभावों से सहन किया तथा अपने बांधे हुए कर्मा की निर्जरा करके सभी बंधनों से मुक्त बन गये। जबकि हमने आर्त्त एवं रौद्र ध्यान करके फिर से नये कर्मा का सर्जन कर, दुःखों की श्रृंखला शुरू कर संसार को बढ़ाया। अतः हे आत्मन्! जब जब दुःख आये कष्ट आयें तब-तब उन महापुरुषों की समता, क्षमा व सहनशीलता को याद कर तू भी समता को धारण कर। स्वेच्छा से उन मिले दुःखों को समझपूर्वक समभावों से सहन कर।

देवगति के देवता भी सुखी नहीं हैं। उन्हें भी विषयों की तृष्णा सताती रहती है। अपनी प्रिय देवांगनाओं के वियोग आदि से वे भी दुःखी बनते हैं।

हे आत्मन्! चिन्तन कर! अशुभ कर्म के उदय से जो जो दुःख तुझे मिले हैं उनको भोगने पर हाय-हाय करने से तेरा क्या दुःख चला जायेगा? नहीं। हाय-हाय करने से दुःख कम नहीं होता, बल्कि बढ़ता है। फिर क्यों न मैं उस दुःख को समतापूर्वक सहन करूँ। अपने मन में समता भावों को स्थिर करने के लिये भूतकाल में हुए उन महापुरुषों के चरित्र व प्रसंगों को याद करूँ, जिससे मुझमें भी समभाव आयें।

धन्य है गजसुकुमार मुनि को, खोपड़ी खिचड़ी की तरह सींझ रही है, पर वे आत्म चिन्तन में लीन हैं।

धन्य है धनमुनि को। पत्नी स्वयं चारों ओर आग लगा रही है, फिर भी उनके दिल में लेश मात्र भी रोष नहीं। कितनी समतापूर्वक मारणान्तिक उपसर्ग को सहन किया।

धन्य है मैतार्य मुनि को। आंख के डोले बाहर निकल आये हैं, फिर भी सोनी के प्रति कोई रोष नहीं है।

धन्य है खंदक मुनि को। उनके शरीर की चमड़ी उतारी जा रही है, फिर भी आत्म भावों में लीन रहें।

अतः हे आत्मन्! सोच, चार गतिरूप असार दुःखों के सागर इस संसार में क्या कोई सुखी है? जिन्हें हम सुखी समझते हैं। वस्तुतः वे भी दुःखी ही हैं। दुःखों के समुद्र में सुख कहाँ? इस संसार में यदि सुख पाना है तो इस प्रकार का सम्यक् चिंतन कर हम अपने दुःख को हल्का कर सकते हैं-

1. कर्म एक प्रकार का ऋण यानी कर्जा है। पूर्वभव में दुष्प्रवृत्ति करके हम कर्म के देनदार बने हैं तो अब उस दुःख को समतापूर्वक सहन कर लेने से हम उस ऋण से मुक्त बन सकते हैं।
2. दुःख में आर्त्तध्यान करने से पुनः मेरे नये कर्मों का बंध होगा। उन कर्मों के उदय से पुनः नया दुःख प्राप्त होगा। इस प्रकार कर्म से दुःख और दुःख से पुनः नये कर्मों का बंध होने से संसार चक्र चलता ही रहेगा। इस भव परम्परा का अंत यदि करना है तो, जीवन में समता लाना अनिवार्य है। समता से पुनः नये कर्म नहीं बंधते।
3. शारीरिक अस्वस्थता के समय अपने से अधिक रोगी व दुःखी व्यक्तियों के दुःखों का विचार करने से दुःख हल्का हो जाता है।
4. असाता व पाप के उदय को हंसते-हंसते सहन करें, चाहे रोते-रोते सहन तो करना ही पड़ता है। जब सहना ही है तो रोते-रोते क्यों?
5. यह रोग व दुःख मेरे ही पूर्वकृत कर्म के उदय के कारण आया है। पूर्व भव में मैंने भूलों की उन भूलों की, सजा ही असाता के रूप में मुझे मिल रही हैं।
6. अपने किये हुये पापों का फल मुझे भोगना ही होगा इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।
7. असाता के उदय में हाय-हाय करने से मेरा दुःख कभी कम नहीं होगा, फिर क्यों न मैं उसे समतापूर्वक सहन कर लूँ।

अतः हे आत्मन्! यदि तू परम शांति व सुख को पाना चाहता है तो जिन वचनों को अपने हृदय में धारण कर। जिन-वचनों में ही संसार के सभी दुःखों को विच्छेद करने की ताकत है।

संसार भावना का लक्ष्य यहीं है कि हम संसार की इन विचित्रताओं, सुख-दुःख की इन स्थितियों का चित्र अपनी आंखों के सामने बार-बार लायें और अपने मन को प्रतिबुद्ध करें। इस संसार भ्रमण से मुझे कैसे छुटकारा मिले। संसार असार है। जिधर देखें, उधर ही विपत्तियाँ, कष्ट चिन्ताएँ खड़ी हैं। समझदारी इसी से है कि इस असार संसार में से हमें सार निकालना है।

निःस्सार यह संसार सब विधि, सार कुछ भी तो नहीं।

भूला हुआ है व्यर्थ क्यों, इसमें न सुख साता कहीं ॥

---

## एकत्व भावना एकत्व का बोध

प्राणी शुभाशुभ कर्मफल, सहता अकेला आप है।

साता असाता बांट सकता, नहीं कोई आप है।

माता-पिता, सुता-सुता, सजनी-सजन, पति-पत्नी सभी।

दिखतें सगे साथी मगर, नहीं दुःख के सांझी कभी ॥

यह हमारी आत्मा जब परभव में प्रयाण करता है तो सब कुछ यहीं छोड़कर अकेला ही जाता है। परभव में अपने शुभ-अशुभ कर्मों को अकेला ही भोगता है और परभव से आता है तब भी अकेला ही आता है। अकेला माता के उदर में आकर शरीर को ग्रहण करता है। अकेला ही जवान व अकेला ही बूढ़ा होता है, अकेला ही शोक करता

है, अकेला ही मानसिक दुःखों से संताप पाता है और अकेला ही मरता है। न जन्मते समय यह कुछ साथ लाता है और न मरते समय कोई इसके साथ जाता है। जीवन भर जो शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप जैसा भी कर्म करता है उसके अनुसार उसका फल भी अकेला ही भोगता है। यह कभी हो नहीं सकता कि कर्म हमने बांधे व इसका फल कोई दूसरा भोगे। बाप के किये गये कर्म बाप ही भोगेगा और बेटे के किये कर्म बेटा ही भोगेगा है। पत्नी का राग पति पर अत्यधिक है, भले ही वह उसका सारा कार्य कर दें, पर जब अपने किये हुए कर्म के कारण उसे नरक में जाना पड़ता है तब वहाँ के असह्य दुःखों को अकेला ही सहना पड़ता है। यह जीव अकेला ही पुण्य व पाप का संचय करता है। अकेला ही कर्म का क्षय करता है व अकेला ही मुक्ति को प्राप्त करता है। जैसे-जैसे जीव के शुभ-अशुभ व शुद्ध भाव होते हैं उसी के अनुसार गति, जाति मुक्ति आदि मिल जाती है। चाहने पर भी कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के दुःख को बांटने में समर्थ नहीं होते। कोई हिस्सेदार नहीं बन सकता। फिर भी माता-पिता, भाई-बंधु आदि से जो मोह है वह उससे नहीं छूटता। ज्ञानी कहते हैं कि आत्महित का अवसर संसार में बड़ी मुश्किल से मिलता है, इसलिये मुझे अपनी आत्मा के हित का ख्याल पहले करना चाहिये।

धर्म ही मेरा सच्चा बंधु व सच्चा हितैषी है। आत्मा का हित इसी में है कि मैं अपने ज्ञान-दर्शन मय स्वरूप की अनुभूति करूँ। मैं एक हूँ ( एगोऽहं ) शुद्ध स्वरूपी हूँ, अरूपी, शाश्वत तत्त्व हूँ। ज्ञाता-दृष्टा भाव ही मेरा स्वरूप है। अर्थात् मैं मात्र जानने देखने वाला हूँ। बाहर में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह सब मैं नहीं हूँ। मैं उन सबसे भिन्न हूँ। जीव का सच्चा आत्मीय वही होता है जो उसे सुख देता है और सभी दुःखों को दूर करता है। क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस लक्षण धर्म ही चारों गति के दुःख दूर करने में समर्थ बनते हैं। धर्म ही हमारा सच्चा बंधु व सच्चा हितैषी है। इसलिये हमें उसी से प्रीत करनी चाहिये। आत्म तत्त्व के जान लेने पर संसार की सभी वस्तुएँ तुच्छ व हेय लगने लग जाती है। अतः हे आत्मन्! तू शरीर से भिन्न एक आत्मा की अनुभूति कर। जिस दिन तू अपनी शुद्ध चैतन्य मय आत्मा के दर्शन कर लेगा, उस दिन तुझे सच्चा सुख व सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। अतः इस जगत के सभी जंजालों को छोड़कर मात्र अपने आपको पहचानने में लग जा। वहीं अपने समय, शक्ति व श्रम का उपयोग कर। शुद्ध आत्मभावों में रमण करना, आत्मभावों में लीन रहना ही सच्चा सुख है। ममता से बंधा प्राणी बार-बार जन्म-मरण कर दुःखी होता है। कषायों की अग्नि से अपनी आत्म-मंजूषा की रक्षा कर। यही श्रेय रूप है। स्वभाव में रमण करने पर ही तुझे सच्चा सुख मिलेगा। अतः तू जानने वाले को जान, देखने वाले को देख व समझने वाले को समझ। शरीर से भिन्न आत्मा की अनुभूति कर।

हे आत्मन्! बार-बार विचार कर। जहाँ-जहाँ ममता है, अपनापन है, वहाँ आपदा भी है। जहाँ चिंता है, वहाँ शोक भी है। यह महान् रोग सम्यग्-दर्शन के बिना कभी मिट नहीं सकता। एकत्व की अनुभूति करने के लिये सबसे पहले बाह्य संयोगों की असारता और असत्यता को हमें समझना होगा। पर वस्तु को निज वस्तु समझना ही सभी आपत्तियों का मूल है। यही दुःख का कारण है। जीव को संसार में जो भी दुःख होते हैं, उसका एकमात्र कारण संयोग है। पर वस्तु के साथ आत्म वस्तु का संयोग ही वियोग के कारण है और वियोग ही सबसे बड़ा दुःख है। वह चाहे धन का हो, परिवार का हो, घर-भवन, दूकान-फैक्ट्री आदि वस्तुओं का हो। चाहे कषाय-ममत्व आदि आभ्यन्तर भावों का हो। इन संयोगों का वियोग होना ही सबसे बड़ा दुःख है। इन संयोगों के कारण ही जीव संसार में बार-बार परिभ्रमण करता है। व्यक्ति इन संयोगों में मूर्च्छित हो जाता है। इन सांसारिक संबंधों में गहरा उलझ कर अपनी आत्मा को भूल जाता है और संयोगों को ही सब कुछ मान लेता है। आखिर एक दिन जब संयोग-वियोग में बदलते हैं। परिजन छूटते हैं, धन जाता है, तब प्राणी दुःखी होता है। संतप्त होता है। हाय मेरी यह सारी वस्तुएँ व सम्बन्ध छूट जायेंगे। मैंने इनके लिये कितने दुःख उठाये, कितना पाप किया, कितना परिश्रम किया। कितने लोगों

को कष्ट पहुँचा-पहुँचा कर इस नश्वर धन को जोड़ा, इन वस्तुओं को इकट्ठा किया और यह सब मुझसे जुदा हो जायेगा। मेरे साथ कुछ भी नहीं जायेंगा। दुनिया को लूट-लूट कर दौलत इकट्ठी करने वाला सिकन्दर भी जग गया था तब उसके दोनों हाथ खाली थे।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि आत्मा जब परभव में जाता है तो सब कुछ यहीं छोड़कर अकेला ही जाता है। संसार में जीवन भर जो शुभ-अशुभ, पुण्य या पाप जैसा भी कर्म करता है उसका फल अकेला ही भोगता है। अतः मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं, मैं किसी का नहीं, मेरी आत्मा ही शाश्वत है। जो ज्ञान-दर्शन युक्त है। संसार के शेष सारे पदार्थ नष्ट होने वाले व मुझसे स्पष्ट भिन्न हैं। वे संयोग से उत्पन्न होते हैं व वियोग से बिखर जाते हैं।

इस प्रकार आत्मा को एकत्व की अनुभूति करने से आत्मा की प्रतीति होती है, शरीर की ममता कम होती है। बाह्य संयोगों का आकर्षण घटता है और आत्मोन्मुखता बढ़ती है।

## अन्यत्व भावना-शरीर व आत्मा के पृथक्त्व का बोध

प्राणी तथा पुद्गल परस्पर में सदा से हैं मिले,  
पर है पृथक् के पृथक् दोनों, नीर पय ज्यों ही हिलें।  
अतएव जब संसार में, तन भी तुम्हारा है नहीं,  
तब धन तथा परिजन, तुम्हारे भला हो सकते कहीं।।

अन्यत्व भावना में आत्मा और अनात्मा का विवेक कराया गया है। आत्मा भिन्न व देह भिन्न है। जब यह देह ही अपनी नहीं तब अन्य कोई प्राणी या पदार्थ मेरे अपने कैसे हो सकते हैं? देह से संबंधित स्वजन आदि सभी मुझसे भिन्न हैं। प्रश्न उठता है कि जब यह आत्मा अकेला है, अकेला ही आया है व अकेला ही जायेगा तो फिर ये माता-पिता जिनके खून से हम बने हैं, जिनका दूध पीकर तथा जिन्होंने पाल पोषकर हमें बड़ा किया है, क्या वे हमारे अपने नहीं हैं? वे बच्चे बच्चियाँ जिनको मैंने जन्म दिया है, क्या वे भी मेरे, अपने नहीं? माता-पिता, भाई-बहिन सभी को छोड़कर जिस पति के चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर किया, क्या वह भी मेरा नहीं? जिस शरीर को नहलाया-धुलाया, अच्छे से अच्छा खिलाया, हर क्षण इसका ध्यान रखा, इसे जरा सा भी कष्ट व पीड़ा न हों, दुःख व असुविधा न हों, जो सदा छाया की तरह मेरे साथ रहता है, क्या वह भी मेरा नहीं? ज्ञानी बार-बार चेताते हैं कि क्यों इन सबको मेरा-मेरा कहता है। आंख बंद हुई कि इनमें से कोई भी तेरा नहीं। सिवाय आत्मा के कोई भी तेरा नहीं है। कर्मों के कारण ही ये संबंध बनते व टूटते हैं। अतः हे आत्मन्! निज स्वरूप का विचार कर। तू देह नहीं आत्मा है। यह देह मात्र भाड़े का घर है, जो पचास सौ वर्षों के लिये हमें मिली है। आयुष्य रूपी भाड़ा जितना है, उतने ही दिन हम देह रूप भाड़े के घर में रह सकते हैं। अधिक किसी भी हालत में नहीं रह सकते हैं। श्वास के धागे खत्म होते ही हमें इस घर को खाली करना पड़ेगा। अफसोस इस बात का है कि हमने भाड़े के घर को ही अपना घर मान लिया है। यहीं कारण है कि जब इसके खाली करने का समय आता है तो, अत्यन्त पीड़ा होती है। मौत का नाम सुनते ही हमें कंपकंपी छूटती है। यह देह हमारा चिर स्थाई घर नहीं है। यह तो कर्म राजा ने हमें भाड़े से रहने के लिये दिया है। अतः अवधि पूर्ण होते ही हमें इसे अवश्य खाली करना पड़ेगा। जिस प्रकार तिलों में खली व तेल, धान में छिलका और अन्नकण भिन्न होते हैं। उसी प्रकार हमारी यह आत्मा-शरीर से स्पष्टतः भिन्न है। प्राण निकल जाने के बाद इस देह को जला दिया जाता है। आत्मा निकल जाने के बाद प्राणों से प्रिय बेटा इस शरीर को सबसे पहले आग लगाता है, परन्तु आत्मा अजर-अमर है, शाश्वत है।

मैं देह हूँ, इस बुद्धि का नाम ही अज्ञान है। मैं देह नहीं चेतन आत्मा हूँ। यह निर्मल बुद्धि ही ज्ञान है। यही भेद विज्ञान है। जो शुद्ध भावों की अनुभूति करता है, वही सम्यक् ज्ञानी है। आत्मा ज्ञानमय है। देह जड़ है। आत्मा शाश्वत है, देह विनश्यत है। पर फिर भी यह अज्ञानी जीव देह, स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि सबको भिन्न जानते हुए भी राग करता है, प्रीति करता है। कैसी विडम्बना है। सब जानते हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु मुझसे भिन्न है, किन्तु फिर भी इन सबसे हमारा रागभाव नहीं छूटता।

जिस प्रकार अपने घर में अन्य का प्रवेश विनाश करता है, वैसे ही ज्ञान-स्वरूप आत्मा में कर्म परमाणुओं का प्रवेश होने से आत्मा दुःखी बनती है। कर्म आत्मा के लुटेरे हैं, आत्म गुणों को लूटते रहते हैं। हमारी आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुण-रत्नों की खान है, पर हम अज्ञानी प्राणी उन गुण रत्नों की सुरक्षा व हिफाजत करना नहीं जानते। हमने आज तक अपने आत्मधन की सुरक्षा नहीं की। इसका परिणाम हमारे सामने है। बार-बार हमें चौरासी लाख जीवयोनि में भ्रमण करना पड़ता है, पर फिर भी हमें अपनी आत्मा की दुर्दशा का दुःख नहीं होता। ज्ञानी बार-बार कहते हैं इन कर्म शत्रुओं को अपने घर में प्रवेश करने से रोकिये। हे मूढ़ आत्मा! क्या तुमने कभी सोचा कि परभावों में रमणता का परिणाम क्या होता है? पर पदार्थों के संग करने से ही आत्मा को चारों गतियों में दुःख रूप डंडे खाने पड़ते हैं। ऐसी कोई यातना नहीं जो इस आत्मा ने अनन्त जन्म-मरण करते समय नहीं भोगी हो। इन सबका मात्र कारण यही है कि हमारी आत्मा पर वस्तु को अपना मानकर उसका भोग करना चाहती है, पर वस्तु का विलास ही दुःख का मूल कारण है। पर पुद्गलों की आसक्ति से ही जीवात्मा की बुरी हालत हुई, पर फिर भी आश्चर्य इस बात से होता है कि जीवात्मा पुनः-पुनः उन्हीं संयोगों के पीछे भागती है। इतने भयंकर दुःखों को पाकर भी परभाव में रमण करने में इसे तनिक भी लज्जा नहीं आती है।

ज्ञानी हमें बार-बार समझाते हैं कि तू व्यर्थ पर पदार्थ में ममता कर खेद पा रहा है। क्षणिक पदार्थों के मोह में व उनके वियोग से तू व्यर्थ ही दुःखी होता है और स्वयं के आत्मधन की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखता। इतने कीमती गुणरत्नों का स्वामी होने पर भी तू दीन हीन भिखारी बन रहा है। तेरी मूर्खता पर हंसी आती है। छोड़ दे अपने इस पागलपन को। देख अपने आत्म खजाने को। अरे! उसकी चिंता तुझे क्यों नहीं होती? जिसके लिये तू रोता है, जिसके लिये तू निरन्तर परिश्रम करता है, जिससे तू डरता है, जहाँ-जहाँ पर तू खुश रहता है, जिन-जिन के लिये तू शोक करता है, जिन-जिन को हृदय से चाहता है, जिसे प्राप्त कर तू प्रसन्नता से उछलता है, खुशी से झूम उठता है। पर याद रखना ये सब पर है, तेरा हित करने वाले नहीं हैं। अपने आत्म-स्वभाव की उपेक्षा करके दूसरों से अपेक्षा करता है। जरा विचार कर। तू देह, धन, मकान स्वजन आदि में इतना मूर्च्छित क्यों हो रहा है? इस तुच्छ देह में ममत्व बुद्धि कर पागल बन जाता है। इसको पुष्ट बनाने के लिये क्या-क्या करता है। अनेक प्रकार की हिंसक रासायनिक दवाओं का सेवन करता है। थोड़ी सी बीमारी में हाय-हाय करता है। सख्त वेदना में हाय में मर गया, हाय में मर गया इस प्रकार के क्रन्दन करता है। देह की शोभा के लिये हिंसक सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग करता है। किन्तु जरा सोच। यह देह तेरा कितना व कब तक साथ निभायेगी। क्या यह परलोक में तेरे साथ जायेगी। दुर्गति में जाने से तुझे रोक सकेगी। यह तो अंत में धोखा ही देने वाली है। हम भले ही चौबीसों घंटे इसका ध्यान रखते हैं, पर यह हमारे लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं। अतः ज्ञानी समझाते हैं कि हे आत्मन्! तू भी इस देह की ममता को छोड़। तुमने धन की प्राप्ति व उसके संरक्षण के लिये अपना खून-पसीना बहाया, इतनी मेहनत की, इसके लिये खूब दौड़ा किन्तु यह धन का विश्वास मत कर। इसके लिये पाप मत कर। यह भी तुझे सुखी नहीं कर सकता। पुत्र से इतनी ममता करता है, आज तुम अपने पुत्र को गोद में ले लेकर लाड़ लड़ाते हो, पुचकारते हो, खिलाते हो, पिलाते हो, उसे साथ ले लेकर घूमते हो, खुद कष्ट सहन कर उसके लिये सारी सुविधायें जुटाते हो, पर बड़ा होने पर वही पुत्र तुम्हारी

कितनी सेवा करेगा, तुम्हारा कितना ध्यान रखेगा। सहानुभूति के दो शब्द भी तुम्हें कहेगा या नहीं? कहीं वह भार समझ कर तुम्हें वृद्धाश्रम में तो नहीं भेज देगा? अतः पुत्रादि संतान की मूर्च्छा का त्याग कर। कहीं वे तुम्हें दुर्गति में भेजने में निमित्त न बन जाय।

अपने विशाल बंगले-फैक्ट्री आदि की भी तू व्यर्थ चिंता करता है। उस पर आसक्ति रखता है, पर तेरा यहीं बंगला एक दिन खण्डर बन सकता है। यह तुझसे छूट सकता है अथवा तू इसे छोड़कर एक दिन चला जायेगा तो, बता क्या दुर्गति में जाने से तुझे ये रोक सकेगा?

अपने स्वजन आदि की भी तू व्यर्थ ममता करता है उनमें से कोई भी तेरा नहीं। सभी स्वार्थ के सगे हैं, वे भी तुझे दुर्गति में जाने से रोक नहीं सकते। अतः हे आत्मन्! तू अपने स्वरूप का विचार कर। परलोक में जाते समय ये सांसारिक सारे रिश्ते नाते, संबंधी, सामग्रियाँ कोई भी तेरा साथ नहीं निभायेंगे। परलोक प्रयाण के समय तेरे यह सारे संबंध छूट जायेंगे, फिर तू व्यर्थ उनके ममत्व में पागल क्यों बन रहा है, सावधान बन जा। जीवन अल्प है। अन्यत्व भावना को समझ कर इन सबकी ममता को छोड़ दे।

हे आत्मन्! अपना निरीक्षण कर। विषय भोगों में आसक्त देह आत्मा की प्रबलतम शत्रु है। अंत में ये तुझे धोखा दिये बिना नहीं रहेगी। शत्रु को मित्र मानकर चलने वाला दुनिया में हमेशा धोखा खाता है। देह की गुलाम बनी आत्मा भी पतन के गर्त में गिरती है। दुनियां में अधिकांश पाप जीव इस देह की ममता से करता है, पर याद रख, देह के पोषण में आत्मा का शोषण है। समतापूर्वक देह को दिया गया कष्ट महाफल का कारण बनता है। यदि तू भी सुखी बनना चाहता है तो पर पदार्थों में आत्म बुद्धि का त्याग कर दे। इनका गुलाम बनने की अपेक्षा इसका मालिक बन।

ममत्व ही दुःख है, ममत्व ही बंधन है। ममत्व के कारण ही आत्मा संसार में भटकती है। हर भव में हमने मूर्च्छा की, ममता की, धन का संग्रह किया। धन तो साथ नहीं गया पर उसकी मूर्च्छा सदा साथ रही। हम भले ही धन से प्रेम करते हैं पर धन हमसे प्रेम नहीं करता। हम पुत्र, पति आदि से प्रेम करते हैं पर वह स्वार्थ पर टिका हुआ प्रेम है। हम पौद्गलिक पदार्थों से प्रेम करते हैं पर वे स्पष्टतः हमसे भिन्न हैं। तू आत्मा है। ज्ञान-दर्शन तेरा स्वभाव है। और तू भिन्न स्वभाव वाले पुद्गल से प्रीति करता है। पुद्गल का स्वभाव ही सड़न, गलन, विध्वंसन रूप है और तू अविनश्वर है। ये नश्वर हैं, तू शाश्वत है। वह क्षणिक है तू सुख का स्वामी है। अतः जो तेरा नहीं, तेरी जाति का नहीं, तेरे स्वभाव का नहीं, तुझसे सर्वथा भिन्न है, उसके साथ व्यर्थ ही ममता करके दुःखी होता है, पाप कर्मों का भार अपने सिर बांधता है।

ज्ञानी कहते हैं कि आत्मा को देह के साथ, परिवार के साथ और धन वैभव के साथ अन्यत्व भाव रखना चाहिये। जब तक अन्यत्व भाव है तब तक कोई चिंता नहीं, बंधन नहीं। अन्यत्व भावना का यह चिन्तन हमें यही सूत्र देता है। “अन्नो जीवो अन्न शरीर” यह जीव अन्य है। शरीर अन्य है। जो बाहर में दीख रहा है, वह मेरा नहीं है। जो काम भोग प्राप्त हुये हैं, वे भी मेरे नहीं, सब मुझसे भिन्न हैं। अतः हे आत्मन्! अब समझ आई है तो बाह्य पदार्थों की ममता का त्याग कर दे। निसंग बन जा। विरक्त बन जा। अकेला बन जा।

मैं कौन हूँ? यह जगत क्या है? इस संसार के साथ मेरा संबंध क्या है? कब से है? जिन्हें मैं माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि मानता हूँ वे वास्तव में कौन हैं? इनका और मेरा संबंध किस कारण से है? कैसे हुआ व कितने दिन टिकने वाला है? इस प्रकार का चिंतन करना अन्यत्व भावना है।

मैं आत्मा हूँ। शरीरादि से स्पष्ट भिन्न अजर, अमर, शाश्वत हूँ। अन्य पदार्थों की तरह नश्वर नहीं हूँ। यह आत्मा कभी जन्मता नहीं, सड़ता नहीं, गलता नहीं, जलता नहीं, मरता नहीं, घटता नहीं, बढ़ता नहीं। रोग से, जरा

से, व्याधि से पीड़ित नहीं होता, जो वास्तव में अछेद्य है, अभेद्य है। कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता। वहीं मैं आत्मा हूँ। यही मेरा स्वरूप है।

## अशुचि भावना-शुचिता का बोध

जो सदा ही नौ मार्ग से नित, मैल बहाती ही रहें।  
ऐसी अपावन देह को, हे जीव तू क्यों कर चहें ॥

यह हमारा शरीर अपवित्र दुर्गन्धित द्रव्यों से भरा हुआ है। कीड़े व कृमि इसमें कुलबुला रहे हैं। मलमूत्र का यह भण्डार है। इस शरीर में नौ मल द्वार हैं, जिनसे हमेशा मल बहता रहता है। यह शरीर कृमि, लट तथा निगोदिया जीवों से भरा हुआ है। रस, रूधिर, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और वीर्य इन सात धातुओं से शरीर बना हुआ है। अतः गंदगी का घर है। चन्दन, कपूर, कस्तूरी, इत्र, पुष्प आदि सुगन्धित व पवित्र द्रव्य भी देह में लगने पर घिनौने व दुर्गन्ध मय हो जाते हैं। परन्तु अज्ञानी प्राणी इस शरीर की शुद्धि के लिये कितने प्रयत्न करता है। विविध तेलों की मालिश करता या करवाता है, फिर गर्म जल से स्नान करता है, नई-नई डिजाइन के कीमती वस्त्र पहनता है, तैयार होकर दर्पण में अपने मुंह को देख-देख कर प्रसन्न होता है और मन में अहंकार करता है। अहो! मैं कितना सुन्दर हूँ। मेरा चेहरा, मेरे वस्त्र, मेरा शरीर आदि देखो, दमक रहे हैं?

पर ज्ञानी कहते हैं कि क्यों तू इतना इतरा रहा है? क्या उकरड़ी को कभी साफ किया जा सकता है? या नहीं। उसे ऊपर-ऊपर से ज्यों-ज्यों साफ करते हैं त्यों-त्यों उसकी दबी हुई गंदगी बाहर निकलती है। उस पर सुगन्धित पदार्थ डालना जैसे मूर्खता है, वैसे ही इस देह को सजाना भी मूर्खता ही है। यह देह अपनी स्वाभाविक दुर्गन्ध को कभी नहीं छोड़ती। अतः इस देह की कितनी ही सेवा की जाय, इसको कितना ही पुष्ट किया जाय, ये अपने स्वभाव को छोड़ने वाला नहीं है। अंत में यह धोखा ही देने वाली है। कारण कि इस देह का स्वभाव ही विचित्र है, जो भी पदार्थ इसके सम्पर्क में आता है उसे भी यह बिगाड़ देता है। अत्यन्त दुर्गन्धमय बना देता है। स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ को भी चाहे वह बादाम का हलवा ही क्यों न हो, उसे भी यह विष्टे के रूप में बदल देती है। सुन्दर व कीमती वस्त्रों को भी पसीने आदि से बिगाड़ देती है। ज्ञानी कहते हैं कि तू चाहे लाख प्रयत्न कर, पर जो स्वयं अशुचि स्वरूप है, उसकी शुद्धि कैसे हो सकती है?

माता के रज व पिता के वीर्य से इस शरीर का निर्माण हुआ। वहां न कोई सुगन्धित पदार्थ है, और न ही कोई सुख-सुविधा। मल से ही इस शरीर की वृद्धि हुई। दम्पति के वीर्य और रज के कचरे के ढेर से, जो शरीर बना है उसमें अच्छा क्या हो सकता है? रज, वीर्य और रक्त जैसे पदार्थों से ही तो शरीर की उत्पत्ति हुई है। मल की कोठरी में इसका सृजन हुआ। मल से सर्जित यह देह भी मल से ही भरी हुई है। मल-मूत्र, हांड, मांस, श्लेष्म, खून, कफ, वात, पित्त आदि मेल से शरीर भरा हुआ है। इसमें कितना ही सुन्दर व सुगन्धित पदार्थ डालों, पर इस शरीर से गंदगी निकलनी कभी बंद नहीं होती है।

मनुष्य का यह शरीर दुःखों का घर है। हजारों व्याधियों के उत्पन्न होने की भूमि है। यह हमारा शरीर हाड़ रूपी काठ के आधार पर टिका हुआ है। नाड़ियों और नसों से जकड़ा हुआ है। मिट्टी के कच्चे बर्तन की तरह कमजोर है। अशुचिमय पदार्थों से भरा, अस्थिर है। जरा और मृत्यु का टूटा-फूटा झौंपड़ा है। सड़ना, गलना और नष्ट होना इसका स्वभाव है। इसके भीतर का प्रत्येक कण अशुचिमय है। यहीं कारण है कि अच्छी से अच्छी वस्तु डालने पर भी यह उसे दुर्गन्धमय बना देता है। अब सोचिये कि अशुचि से भरे इस शरीर को कोई कितना ही शुद्ध करने का

प्रयत्न करें, पर क्या इसके भीतर की दुर्गन्ध मिट सकती है? हर उदर में मल मूत्र सड़ रहा है। मल मूत्र, कृमि आदि का तो यह शरीर कारखाना है। कुछ समय तक यदि हमारे पेट में मल रूक जाता है तो भी उसकी सड़ांध यानी दुर्गन्ध कितनी भयानक होती है?

गंदगी से भरपूर इस शरीर को सुगन्धित व आकर्षित बनाने के लिये भले ही तू कितनी ही मेहनत कर। सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग कर। तू जल से धोकर भले ही बाहरी गंदगी को साफ कर दे, पर भीतरी गंदगी कभी साफ होने वाली नहीं है। अशुचि से भरे इस तन में तू पवित्रता की ही कल्पना कर करके इसे सूंघता है, चाटता है, पुचकारता है, प्रेम से हाथ फेरता है, यह कैसा ममत्व है? यह पागलपन नहीं तो और क्या है? ओह! सुन्दर मुखड़े को देख-देख कर तू फूला नहीं समाता। मुंह में जीभ व दांत लगे हैं वे क्या हैं? जीभ मांस का टुकड़ा ही तो है जिस मांस को देखते ही हमें घृणा आती है, ग्लानि होती है वहीं मांस का टुकड़ा चौबीस ही घंटे हमारे मुंह में रहता है। प्रतिक्षण उससे लार व थूंक टपकता है और ये दांत ये भी क्या हैं? हड्डी के टुकड़े ही तो है। इन्हीं हड्डी के सहारे हम खाते हैं। उन्हीं से कटकर अन्न हमारे पेट में पहुँचता है। हम अच्छे से अच्छा पदार्थ खा खाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। पर शरीर आखिर क्या है? गंदगी का घर ही तो है।

शरीर व्याधियों का मन्दिर है। इस शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम हैं। एक-एक रोम पर पौने दो रोग लगे हुए हैं। अभी यह शरीर सुन्दर व स्वस्थ दीख रहा है, पर अगले ही क्षण इस शरीर में से सैकड़ों व्याधियाँ फूट सकती है। जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

ज्ञानी कहते हैं कि अशुचि से भरे इस तन का सार यही है कि तू चाहे तो इसी शरीर से मोक्ष सुख प्राप्त कर सकता है। आत्मा को शाश्वत् सुख प्रदान करने की सामर्थ्य भी हमारे इसी औदारिक शरीर में है। अतः तू निराश मत हो। आज तक जितनी भी आत्माएँ मोक्ष में गई है, वे सब इसी देह को प्राप्त करके ही गई है। अतः हमें जो यह मनुष्य देह मिली है वह व्यर्थ न जायें। इस स्वर्णिम अवसर को हम खाने पीने भोगने व ऐशों आराम में बर्बाद न करें। इस गोल्डन चांस को पाकर जल्दी ही हमें मुक्ति की साधना कर लेनी चाहिए। आत्म-कल्याण के पथ पर निरन्तर गतिशील बनकर मुक्ति का वरण कर लेना चाहिए। इस देह से हम जीवों की यतना कर सकते हैं। यदि हम चाहे तो दान दे सकते हैं। यदि हम चाहें तो शील पाल सकते हैं। तप व संयम का आचरण कर देह को तीर्थ स्वरूप भी बना सकते हैं। देवों द्वारा पूजनीय व वंदनीय भी बना सकते हैं। त्रैलोक्य पूज्य तीर्थंकर परमात्मा इसी देह से साधना कर तीर्थंकर पद तक को प्राप्त कर लेते हैं। अतः ज्ञानी कहते हैं कि यह देह भले ही अपवित्र है, बीभत्स है, अशुचि का घर है, पर मुक्ति नगर पहुँचाने वाली है, अतः दुर्लभ है। इसी देह द्वारा विरति धर्म की साधना करके हम अपने समस्त कर्म बन्धनों को काटकर सिद्ध बुद्ध व मुक्त बन सकते हैं। जो साधक अपनी देह को मोक्ष का साधक बना, साधना कर लेता है वह मुक्ति का वरण कर सभी दुःखों से छूट जाता है। अतः हे आत्मन्! इस देह को पाकर तू भी ऐसा पुरुषार्थ कर, जिससे तेरी आत्मा भी मुक्ति के सर्वाच्च शिखर पर पहुँच सके।

शरीर की अशुचिता का चिंतन करने का सार यही है कि इस शरीर के प्रति हमारा जो ममत्व भाव है वह कम हो। दैहिक सुन्दरता का आकर्षण कम होकर हम अपनी आत्मिक सुन्दरता का दर्शन करें। शरीर सुन्दर है तो क्या और कुरुप है तो क्या? यदि आत्मा में सुन्दरता नहीं तो गौरी चमड़ी का क्या महत्त्व। इस भावना का बार-बार चिन्तन करने का सार यही है कि जिस शरीर की सुन्दरता पर हम मुग्ध हो रहे हैं, जिसकी ममता में हम दीवाने हो जाते हैं, उस शरीर के प्रति उसके रूप रंग के प्रति हमारी आसक्ति, हमारी प्रीति व हमारा आकर्षण कम हों। हम उसकी पवित्रता और अशुचिता को समझें। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को समझकर मोक्ष की साधना में लग जायें यही इस दुर्लभ मानव तन को पाने का सार है।

## आस्रव भावना- कर्म बंधन का मूल कारण

मन, वचन, तन त्रय योग द्वारा, कर्मजल नित आ रहा।

नर देह, नौका से तुम्हें, जग जलधि बीच डुबा रहा।

जिससे तुम्हें था पार होना, डूब तुम उसमें रहे।

सोचो जरा जग जलधि में, नौका न जिससे पार हो रहें।

मन, वाणी और शरीर ये तीन हमारी शक्तियाँ हैं। मन-वचन व काया जाने-अनजाने, सोते-जागते आठों याम सक्रिय रहते हैं। हम जो भी शुभ-अशुभ भाव करते हैं, वे इनके द्वारा ही करते हैं। इन्हीं की सक्रियता या अस्थिरता से हम नवीन कर्मों का अर्जन कर लेते हैं। यही कर्म का आश्रव है। आये हुए कर्मों का अपनी शक्तियों सहित, किसी निश्चित अवधि तक आत्मा के साथ अनुबंधित हो जाना 'कर्म बंध' है। कर्म बंध ही चारों गतियों में दुःख का कारण है।

हमारी इस आत्मा ने विषय-कषाय के वश होकर आशा-तृष्णा सहित असमाधि मरण अनन्त बार किया। इससे आत्मा की कोई गरज सरी नहीं। उल्टा भव-भ्रमण ही बढ़ाया। चतुर्गति में बार-बार गोते खाये और अनन्त दुःखों को प्राप्त किया। हे जीव! अब इन आस्रव द्वारों को समझ कर इनको छोड़ दें। विवेक को जागृत कर। सावधान बन जा।

मोहनीय कर्म के उदय व योग के निमित्त से ही कर्मों का आस्रव होता है। इस विस्तृत चौदह राजुलोक रूप संसार में सर्वत्र कार्मण वर्गणाएँ उपलब्ध है। ये कार्मण वर्गणाएँ पुद्गल स्वरूप है। जब जब आत्मा राग-द्वेषादि मोह भाव करती है, तब वे कार्मण वर्गणाएँ आकर्षित होकर आत्मा के पास पहुँच जाती है और क्षीर-नीर की भाँति आत्मा के साथ घुल मिल जाती है तथा आत्मा कर्मों के अधीन बन जाती है। इस तरह से आत्मा में कर्म का आगमन होता है, उसे ही आस्रव कहते हैं। राग-द्वेषों के परिणामों द्वारा जीवात्मा जब अपने शत्रु रूप कर्मों को आत्मघर में प्रवेश करा देती है तब उसे नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती है।

इस प्रकार आत्मा के संसार परिभ्रमण का मूल कर्म है। कर्म का मूल आस्रव द्वार है। ये बंधे हुए कर्म जब उदय में आते हैं तब आत्मा आकुल-व्याकुल बनकर फिर से नये कर्म बांध लेती है। इस तरह ये कर्म प्रवाह रूप में होते रहते हैं। कर्म उदय के फलस्वरूप ही आत्मा को जन्म-मरण की पीड़ा, रोग, शोक, भय आदि के दुःख भोगने पड़ते हैं। इन आस्रव द्वारों के खुले होने से प्रति समय कर्मों का आगमन चालू रहता है। आत्मा अपनी शुभाशुभ प्रवृत्ति के द्वारा सात-आठ कर्मों का बंध प्रति समय करता रहता है। कर्म का क्षय अल्प होता है जबकि आगमन और बंध अधिक होता है। कर्मों के आस्रव का कारण ही संसार समुद्र में जीव गोते खा रहा है। अज्ञान के वशीभूत जीव जैसे-जैसे इस संसार से निकलने का प्रयास करता है, वैसे-वैसे और अधिक डूब जाता है। जीव इस संसार समुद्र से पार तभी हो सकता है, जब जीव आस्रव के पाँच कारणों को समझकर उनसे होने वाली अपनी हानि-लाभ का निश्चय करके समभावों में लीन रहने का प्रयत्न करें। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय व योग से आत्मा प्रति समय कर्म का बंध करती है। आत्मा के असंख्य आत्म प्रदेश पर अनन्त-अनन्त कार्मण वर्गणाएँ लगी हुई हैं और प्रत्येक कर्म में आत्मा को भयंकर सजा देने की ताकत रही हुई है।

आस्रव भावना में हमें यही विचार करना है कि यह जीव मूलतः शुद्ध स्वरूपी है। किन्तु अज्ञान व मोह के कारण कर्मों का संचय कर अशुद्ध बना है। कर्मों के आगमन के मार्ग को ही आस्रव कहते हैं। आस्रव द्वारा आत्मा कर्मों को ग्रहण करती रहती है। कर्म बंध का मूल कारण मिथ्यात्व है। मिथ्या-दृष्टि है। मिथ्या अर्थात् असत्य और

दृष्टि अर्थात् दर्शन, श्रद्धान्। जीवादि तत्त्वों के विपरीत श्रद्धान् को तथा आत्मा से भिन्न पर पदार्थों में आत्म-बुद्धि का आग्रह होना मिथ्यात्व है। यह जीव की बुद्धि को भ्रमित कर देता है। जीव का यथार्थ ज्ञान से शून्य जैसा कर देता है। वह अपने बारे में भी यथार्थ दृष्टि से नहीं सोचता।

**मिथ्यात्व** की उपस्थिति में नौ पूर्वोक्त का ज्ञान भी अज्ञान और चरित्र भी काय कष्ट कहलाता है। मिथ्या दृष्टि आत्मा करोड़ों वर्षों के तप आदि से जितने कर्मों की निर्जरा करता है, उससे अनन्त गुणी निर्जरा सम्यग् दृष्टि आत्मा करती है। मिथ्यात्व ही सभी पापों का सरदार है। इसी से कर्मों का आगमन चालू रहता है।

**अविरति-** अर्थात् पाप के त्याग की प्रतिज्ञा का अभाव। जब तक इच्छापूर्वक रुचि के साथ मन व इन्द्रियों को संयमित नहीं किया जाता, तब तक पाप न करते हुये भी पाप का बंध होता है। जैसे किसी से मकान किराये पर लिया, भले ही उस मकान में जाकर रहे या न रहें तो भी उसका भाड़ा हमको चुकाना पड़ता है। जैसे किसी से रुपये उधार लिये, उन रुपयों का भले ही उपयोग करें या न करें। समय होते ही ब्याज तो देना ही पड़ता है। इसी प्रकार कर्मों का बंधन यदि हम नहीं चाहते तो हमें व्रत प्रत्याख्यान करके पापों से अपना कनेक्शन काट देना चाहिये, अन्यथा पापों का आगमन सतत जारी रहता है।

**कषाय-** कषयानी संसार व आय का मतलब वृद्धि। जिससे संसार की वृद्धि हो, उन्हें कषाय कहते हैं। इन कषाय भावों से ही हमारे आत्म प्रदेशों पर कर्म चिपकते हैं। कषाय के आवेग में आत्मा का विवेक नष्ट हो जाता है। उसके सोचने समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है। आवेश में आकर नहीं बोलने योग्य शब्दों को बोल देते हैं। कुछ शब्द तीर के समान अत्यन्त तीखे होते हैं, जो सीधे हृदय में जाकर चुभते हैं। वचन के घाव जीवन पर्यन्त चुभते रहते हैं व कषायों को उत्पन्न करने में निमित्त बनते हैं।

**योग-** मन, वचन और काय की प्रवृत्ति से भी आत्मा कर्म का बंध करती है। शुभ प्रवृत्ति से शुभ कर्म व अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्म का बंध होता है। इस प्रकार इन पाँचों आस्रव द्वारों से आत्मा में कर्म का आगमन होता रहता है और आत्मा इस भीषण संसार अटवी में भटकती है। राग-द्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व आदि आस्रव हैं, पाप हैं, इनसे मैं कब मुक्त बनूँगा। ऐसा चिन्तन हमें इस भावना में करना चाहिए।

हे आत्मन्! तेरे आत्म रूपी सरोवर में पाँच आस्रव नालों से निरन्तर अष्ट कर्म रूपी जल भर रहा है। जब तक जल का भराव होता रहेगा, तब तक मुक्ति कैसे मिल सकती है? प्रशस्त व अप्रशस्त कार्यों से पुण्य व पाप करता हुआ जीव जिन-जिन कर्मों का आस्रव करता है, वे ही उसकी मुक्ति में बाधा डालते हैं। दुःख भी जीव को भोगना पड़ता है और सुःख भी जीव को भोगना पड़ता है। हे जीव! इस प्रकार के आस्रव के कड़वे फलों का तुमने बार-बार अनुभव किया। अब तो समझ जा, सावधान हो जा, जागृत बनकर उनके विरोध के लिये प्रयत्नशील बन।

आस्रव से मुक्त होने पर ही आत्मा स्वभाव दशा में आती है। अब समझ आई है तो आस्रव मार्ग को समझ कर इन पर रोक लगा। सद्गुरु की कृपा से ज्ञान व विवेक का दीपक जला है तो, अब अपने स्वरूप में लीन बनने का प्रयास कर। तभी परम आनन्द की प्राप्ति होगी। यही परमानन्द मुक्ति का बीज है।

---

## संवर भावना आत्म सुरक्षा विज्ञान

त्रय गुप्ति, पांच समिति, परीषह और चारित्र से सभी,  
रोक दो मन-वच-काय से, छिद्र नौका के सभी।  
भारी न होकर यह तुम्हारी नाव तिरने के लिये,  
जिससे समर्थ बनें, तुम्हें भव पार करने के लिये।।

मोह के नशे में अपने आपको भूलकर संसार परिभ्रमण करते हुए जीव को जब कभी भगवान की भक्ति का सहारा मिल जाये, प्रभु वाणी पर विचार- चिंतन करने का पुरुषार्थ जाग जायें या पूर्व जन्मों के वैसे संस्कार जागृत हो जाये तब सद्गुरुओं की टेर से मोह निद्रा टूटती है। मोह निद्रा का अभाव होने पर मिथ्यात्व चला जाता है। हमारी इन्द्रियाँ व मन स्वभाव से ही चंचल है अतः संयम रूप अंकुश से उन्हें रोकना चाहिये। पाप त्याग की प्रतिज्ञा करने से हमारा मन मजबूत होता है। क्षमादि यतिधर्म के पालन से आत्मा के आश्रव द्वार बंध हो जाते हैं। पांच समिति, तीन गुप्ति संवर के साधन हैं। ज्ञान-ध्यान तप में प्रवृत्ति करने से नये कर्मों का बंध नहीं होता।

हे आत्मन्! जिन-जिन मार्गों से कर्मों का आगमन होता है, उन-उन मार्गों को रोक दें। यही संवर है। शरीर में जैसा-जैसा रोग होता है, उसी के अनुसार उसका उपचार किया जाता है। बस इसी प्रकार से यदि जीवन में क्रोध की प्रबलता है तो, उसे रोकने के लिये क्षमा की दवा लें। अहंकार का पलड़ा भारी है तो, विनयशील बने। जीवन में लोभ अधिक है तो, संतोष को धारण करें। कपट है तो सरल बन जायें। अपनी आत्मा में छिपे अन्तरंग रोगों का पता हम ही लगा सकते हैं। हमारी इन्द्रियाँ व मन स्वभाव से ही चंचल हैं। अतः संयम रूप अंकुश से उनको रोकना चाहिये। पाप-त्याग की प्रतिज्ञा करने से हमारा मनोबल मजबूत होता है। भोजन में यदि हमारी तीव्र आसक्ति हो तो, प्रतिदिन एक दो विगय का त्याग करके अथवा उपवास आदि करके मन की आसक्ति पर प्रहार कर सकते हैं। मिथ्यात्व के आस्रव द्वार को रोकने के लिये, सम्यग् दर्शन की साधना करनी चाहिए। मान का बुखार चढ़ गया है तो, विनम्रता की दवाई लेने से मान उतर जायेगा। माया का घाव लग गया हो तो, सरलता से उस घाव को भर दो। यदि लोभ का सिरदर्द हो तो, संतोष की गोली लेकर उसे उतार दो। जब-जब क्रोध के भाव आये तो विचार करें, इसमें दोष किसका है? यदि मेरी भूल है तो मुझे गुस्सा नहीं करना चाहिये। क्रोध आत्मा की विभाव दशा है। इसका क्या दोष है? मेरे ही पूर्व कृत कर्मों का दोष है। मैं क्रोध करूँगी तो मेरे ही चित्त की प्रसन्नता व मेरी शान्ति नष्ट होगी। अशांति व तनाव के कारण मेरा शारीरिक स्वास्थ्य भी चौपट हो जायेगा।

अतएव ज्ञानी हमें बार-बार समझाते हैं कि अत्यन्त दुर्जेय मन-वचन-काय के योगों को तीन गुप्ति से समझकर जल्दी जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। कषाय व योग दोनों ही हमारी आत्मा को कर्म बंधन की बेड़ियों में बांधने वाले हैं। ये ही हमें चतुर्गति रूप संसार में भटकते हैं। इनको समझो, छोड़ो और पवित्र संवर के पथ पर प्रवृत्तिशील बन जाओ।

हे आत्मन्! चिंतन कर। तेरे आत्म भवन में ज्ञान-दर्शन, सुख रूप अक्षय निधि भरी पड़ी है, इस सद्गुण रूपी खजाने को लूटने के लिए आस्रव रूपी लूटेरे निरन्तर घात लगाये खड़े हैं। तू संवर साधना द्वारा इन आस्रव द्वारों का विरोध कर। निश्चित होकर फिर आत्मानंद में विचरण कर।

संवर भावना से इन्द्रियाँ एवं मन पर संयम होता है। क्षमादि यति धर्म के पालन से आत्मा के आस्रव द्वार बंद हो जाते हैं।

सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद कषाय- विजय व तीनों योगों का अभाव यह सब संवर के रूप है। पांच समिति, तीन गुप्ति संवर के साधन हैं। इन साधनों को अपनाकर हमें भी अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिये। ज्ञान-ध्यान में प्रवृत्ति करने से मेरे नये कर्मों का बंध नहीं होगा। इस प्रकार हे जीव! संवर भावों को समझ। कर्मों के आगमन के मार्ग पर रोक लगा।

पंडित दौलतरामजी ने कहा- जिन्होंने पुण्य व पाप दोनों की आसक्ति तोड़कर आत्म साक्षात्कार करने का प्रयास किया उनके आते हुए कर्म रुक गये। उन्हें संवर प्राप्त हो गया। उन्होंने समता के अलौकिक सुख का आनन्द उठा लिया।

यदि शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों से आसक्ति हटाकर मैं अपनी आत्मा का अनुभव कर सकूँ, उसके चिंतन में तल्लीन बन सकूँ तो आने वाले कर्मों का प्रवाह मंद होगा व रुकेगा। यहीं संवर है।

## निर्जरा भावना कर्म क्षय का उपाय

पूर्व का संचित किया जो, कर्म रूपी नीर है,  
जिससे तुम्हारी नाव देखो, डूबने में लीन है।  
संकल्प में जुटकर अहिंनिश, जब उलीचागे सभी,  
संसार सागर पार यह, नौका तुम्हारी हो तभी ॥

तप द्वारा समय से पूर्व ही कर्म की धारा को सुखा देना अविपाक निर्जरा है। वहीं हमारे लिये उपयुक्त है। इसी से भव भ्रमण समाप्त होता है।

कर्मों के झड़ने का नाम निर्जरा है। निर्जरा के लिये जीवन में संयम अनिवार्य है। समय रहते आत्म कल्याण के लिये पुरुषार्थ करना होगा। मनुष्य भव में ही यह अवसर मिलता है। जीवन में आंतरिक पवित्रता लाकर सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा, संचित कर्मों का समूह को नष्ट करने का प्रयास ही निर्जरा भावना का वास्तविक चिंतन है।

संवर भावना के द्वारा हमने कर्मों के आगमन द्वारों पर रोक लगा दी, पर जो कर्म पहले से बंधे हैं, उनसे कैसे छूटे? उनको भोगे बिना यानी उनसे छूटकारा पाये बिना हम मुक्त नहीं बन सकते। उन संचित कर्मों को हम तप से ही नष्ट निर्जरित कर सकते हैं। तप के पहले संवर आवश्यक है। **अकेला तप आत्मा को कर्म मुक्त नहीं कर सकता है। संवर युक्त निर्जरा ही मुक्ति का साधन है।**

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का अमुक अंशों में क्षय होना, क्रमशः उनका आत्मा से झड़ जाना, कर्मावरण दूर हटना ही निर्जरा है। निर्जरा आत्मा का क्रमिक विकास है। एक देश से अर्थात् क्रमिक रूप से संचित कर्मों का नाश होना निर्जरा है। तप-विशेष से कर्मों के फलदान की शक्ति नष्ट कर अलग कर देना निर्जरा है। भव भ्रमण के बीज भूत कर्म है। कर्मों का आत्म प्रदेशों से पृथक हो जाना निर्जरा है। निर्जरा दो प्रकार से होती है। 1. सकाम निर्जरा, 2. अकाम निर्जरा। कर्म आत्मा का आवरण है, बंधन है, फिर वह चाहे शुभ कर्म हो, चाहे अशुभ कर्म हो। दोनों ही बंधन हैं। बांधे हुए कर्मों को भोगे बिना छूटकारा संभव नहीं है, किन्तु यदि उनके भोगने का क्रम अज्ञान व अबुद्धि यानी बिना समझ के सहज रूप से हुआ, शुभ विचारों से नहीं भोगा तो, उस निर्जरा के साथ पुनः नये कर्म का बंध भी होता जाता है। जितने कर्म खिरते हैं, उनसे अधिक बंध जाते हैं। उस निर्जरा से आत्मा हल्की नहीं होती। इसे अकाम निर्जरा कहा है। प्रयत्न एवं ज्ञान पूर्वक तप आदि क्रियाओं के द्वारा कर्मों का नाश करना सकाम निर्जरा है। परतन्त्रता के कारण, पराधीनता से भोग-उपभोग, भोजन-पानी आदि कष्टों को सहन करने से अकाम निर्जरा होती है। जैसे नरक, तिर्यच आदि गतियों में परवशता से अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। असह्य वेदनाएँ भोगनी पड़ती है। मनुष्य जीवन में भी गरीबी में, बीमारी में अनेक प्रकार के कष्ट सहना पड़ता है। मजबूरी व अनिच्छा से हम उन दुःखों को सहन करते हैं। उस समय रोते हैं, तड़फते हैं। दुःखों व वेदनाओं से छूटने के लिये हिंसा, झूठ आदि पापाचरण करते हैं। इस प्रकार बिना इच्छा के दुःखों को सहन करना अकाम निर्जरा है। अपनी इच्छा के बिना लोक निंदा व लोक भय से ब्रह्मचर्य का पालन करना, भूख-प्यास सहना अकाम निर्जरा है। इस लोक में पूजा प्रसिद्धि आदि की कामना से व परलोक में देव आदि बनने की कामना से जो तप आदि क्रियाएँ बिना समझे की जाती है। देव गुरु, धर्म का जिन्हें ज्ञान नहीं, आत्मा का स्वरूप, मोक्ष का स्वरूप समझते नहीं, पर जब-तप आदि क्रियाएँ करते हैं,

वह भी अकाम निर्जरा है। लेकिन समझपूर्वक जो समभाव से क्रियाएँ की जाती हैं उनसे सकाम निर्जरा होती है। आत्मा और मोक्ष का जिन्हें विवेक होता है, आत्मज्ञान के साथ की गई क्रियाओं से करोड़ों वर्षों के बंधे कर्म अल्पकाल में निर्जरित हो जाते हैं। अकाम निर्जरा अंधी दौड़ है। सकाम निर्जरा विवेक पूर्वक गति है। समझपूर्वक इच्छाओं का निरोध करने से निर्जरा होती है। इच्छाओं का पेट कभी नहीं भरता। यह चमड़े का पेट तो छोटा सा है, आधा सेर अनाज से भर जाता है, किन्तु मन का पेट इतना विशाल है कि यह कभी नहीं भरता। इस मन की भूख को हजार चक्रवर्ती या स्वर्ग के इन्द्र का साम्राज्य से भी भरना संभव नहीं है। ज्ञानी फरमाते हैं कि हे जीव! जिस दिन तूने अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर ली तो सच्चा आनन्द का स्रोत भीतर में से फूट निकलेगा, जिससे आत्मा को सच्चे सुख व शांति की प्राप्ति होगी। आत्मिक आनन्द का कोई छोर नहीं होता, वह शाश्वत होता है। अखूट व अनन्त होता है। यदि विपरीत परिस्थितियों में भी हमारा मन शांत रहता है, वृत्तियाँ शांत रहती हैं, विषम भाव जागृत नहीं होते, मन में मोह, क्रोध व अहंकार की लहर पैदा नहीं होती है तो, समझना चाहिये कि हमारा मन शांत हुआ है। अन्तर में सजगता हो, विवेक का जागरण हो। हमारा लक्ष्य मात्र यहीं हो कि हम अपने भीतर सोये चैतन्य को जाग्रत करें। ज्ञान के कपाट जो बंद हैं, उन्हें खोलें। इस देह मंदिर में ज्योतिर्मय देवता सोया हुआ है, उसके दर्शन हमें करना है। हर आत्मा में चैतन्य की अखूट ज्योति चल रही है, उस ज्योति के दर्शन हमको करना है। जिस दिन यह हो जायेगा। वह दिन हमारा धन्य-धन्य हो जायेगा।

## धर्म भावना सम्यक जीवन जीने की पद्धति

स्वः स्वभाव ही तो आत्मा का श्रेष्ठ सुन्दर धर्म है,  
औपाधि भाव प्रबल कराता, आत्मा से कर्म है।  
तज कर्म कारण, जीव स्व स्वभाव में ही लीन हो,  
तजकर समस्त विभाव, निज सुख में सदा लवलीन हो।।

वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। संसार में धर्म ही सुख प्राप्ति का उपाय है। धर्म मेरा अपना स्वभाव है इसलिये वह मेरे भीतर है। उसे मेरे ही कुसंस्कारों ने, वासनाओं ने वर्तमान में विकारी बना रखा है। इन विकारों के विलीन होने पर धर्म स्वतः प्रगट होगा। मेरा वह सहज स्वभाव ही मुझे सुख देने वाला है। सुख का भंडार है। मन पर नियन्त्रण रखना उसे संयत कर अनुशासन में लाना धर्म का ही काम है।

धर्म ही आत्मा के सुगति का कारण है। इहलोक व परलोक में सुख देने वाला धर्म ही है। अतः हमें धर्म का आचरण करना चाहिये। संसार में धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो विश्व का आधार बन सकता है। सम्पूर्ण विश्व में प्राणी मात्र की जीवन स्थिति का आधारभूत तत्त्व धर्म है। धर्म के कारण ही मनुष्य अपनी स्थिति में चल रहा है। पृथ्वी अपनी धुरी पर स्थिर है। सूर्य अपने मंडल में गतिशील है। पवन चल रही है। अग्नि जल रही है। समय-समय पर सभी ऋतुएँ अपना प्रभाव दिखाती हैं। इन सबका आधारभूत कारण धर्म है। वस्तु का स्वभाव ही धर्म है, अग्नि का स्वभाव उष्णता है, जल का स्वभाव शीतलता है, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव में स्थिर रहे, यही धर्म का स्वरूप है। आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्योतिर्मय है। वह ज्ञान दर्शन रूप आलोक से सदा आलोकित रहे, यही आत्मा का धर्म है।

धर्म की साधना साधकों के बिना नहीं हो सकती और धर्म की साधना वही करेगा, जो सच्चे सुख प्राप्ति का इच्छुक होगा। यह शक्ति जीवों के अलावा जड़ पदार्थों में संभव नहीं हैं। चारों ही गतियों के जीव धर्म की साधना

करना चाहते हैं, पर कर नहीं सकते। कारण बहुत से जीव जो निगोद में हैं वे, अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुरूप ही प्रवृत्ति करने में निमग्न हैं, उन्हें अवसर ही नहीं मिलता और न ही वे ऐसा चिन्तन कर सकते हैं कि मैं अपने भविष्य को कैसे बनाऊँ? तिर्यचों में कुछ धर्म चेतना के विकास का अवकाश है। लेकिन वे भी एक निश्चित सीमा के आगे नहीं बढ़ सकते। मात्र मनुष्य जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी जीवन में धर्म साधना पूर्ण रूप से कर सकते हैं। सदाचार व अहिंसा का पालन कर शुद्ध समतापूर्वक जीवन जीकर, समस्त कर्म बंधनों को काटकर हम मुक्ति का वरण कर सकते हैं। वास्तव में धर्म सही जीवन जीने की पद्धति है।

महात्मा गांधी ने भी कहा मोक्ष की ओर ले जाने वाला और संयम की शिक्षा देने वाला शास्त्र ही मेरा धर्म है। धर्म का जीवन में संयम के रूप में सम्यक् आचरण होता है, तभी धर्म अपना चमत्कार दिखाता है। आत्मा को शुद्ध निर्मल बनाने का जो साधन है, वह धर्म है। क्षमा, सरलता, संतोष, विनय व विवेक ये धर्म के द्वार हैं।

आज भी संसार में धर्म विद्यमान है। धर्म की विद्यमानता में भी जब इतनी बुराइयाँ और संत्रास पैदा हो गया है तो यदि संसार में धर्म नहीं रहा, तब हमारी क्या हालत होगी? धर्म के रहते हुए भी आज मनुष्य इतनी क्रूरता सीख गया। आज हमारे सामने नरक का भय है, कर्मों का भय है, बदनामी का भय है, लोक का भय है। इन सबका भय होने से हम कितनी ही बुराइयों से सहज बचे हुए रहते हैं, यदि यह भय न रहें तो फिर व्यक्ति क्रूर से क्रूर आचरण करते हुए भी भयभीत नहीं होगा, फिर कौन उस पर रोक लगायेगा? हमारी वृत्तियाँ स्वच्छन्द बन जायेगी। **कोई भी बुरा कार्य करने पर व्यक्ति पश्चाताप करता है। अपनी आत्मा को बार-बार धिक्कारता है। किये हुए पापों की आलोचना कर आंसू बहाता है। यदि धर्म का अंकुश नहीं होगा, पापों का डर नहीं होगा तो, हमारी क्या दुर्दशा होगी, इसकी कल्पना से ही मन में सिंहरन होती है। धर्म ही मनुष्य को सच्चरित्र, ईमानदार और जन हितैषी बनाता है। बुराई को मिटाकर भलाई सिखाता है। जैसे कि शरीर से आत्मा निकल जाय तो फिर जीव शिव नहीं होकर शव बन जाता है। वैसे ही जीवन से धर्म निकलने पर जीव की हालत होती है।**

इस प्रकार धर्म भावना की फलश्रुति यही है कि हम अपने शुद्ध स्वरूप को समझें। शुद्ध स्वरूप का चिंतन करें। उसके विविध साधना मार्गों का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को शुद्ध व सफल बनायें। अपनी आत्मा का कल्याण करें। आत्म-स्वरूप को समझें। यदि हम आलस्य, अज्ञान व मोहवश सच्चे धर्म को समझकर भी उस पर आचरण नहीं करेंगे तो पुनः इस संसार चक्र में, अनन्त भव प्रवाह में डूब जायेंगे।

**धर्म धर्म सब कहे, धर्म न जाने कोय।**

**जाति ना जाने जीव की, धर्म किस विध होय।।**

मानसिक विकारों से रहित जो श्रद्धा, ज्ञान व अहिंसक आचरण हैं वही धर्म है। उसे प्राप्त करने से जीव को अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है।

---

## **लोक भावना-लोक के स्वरूप को समझें**

**लोक का अर्थ है-** जीव समूह और उनके रहने का स्थान। जिसमें हम भी एक हैं। जैसे एक घर में रहने वाला सदस्य अपने घर के संबंध में विचार करता है, उसके आधार व उत्थान की चिंता करता है, वैसे ही सभी मनुष्य इस लोकगृह के सदस्य हैं। अन्य सभी जीव समूहों के साथ उसका भी यही दायित्व है। जो जीव धर्म का आचरण करते हैं, वे इस लोक में सुखी बनते हैं। उच्च जाति व कुल में जन्म लेते हैं। जो जीव अधर्म का आचरण करते हैं, वे नरक निगोद आदि दुर्गंतियों को प्राप्त कर असह्य कष्ट पाते हैं।

लोक स्वरूप का चिंतन वही जीव करता है, जिसे लोक पर, चारों गतियों में भ्रमण रूप संसार, पुनर्जन्म व आत्मा पर दृढ़ श्रद्धा होता है। जो यह मानता है कि परलोक भी है। यहाँ जैसे शुभ अशुभ कर्म में करूँगा, उसका फल मुझे आगे अवश्य मिलेगा। जिसे अपनी आत्मा पर श्रद्धा है। वह लोक पर श्रद्धा अवश्य करेगा। जो अपनी आत्मा का विचार करता है वह लोक के स्वरूप का भी अवश्य विचार करेगा। कारण कि सभी प्राणधारी जीव लोक में रहते हैं। हमारे आवास, आत्मविकास की आधार भूमि यह लोक है। अतः लोक का स्वरूप, आकार-प्रकार क्या है? उसकी रचना के मूल तत्त्व क्या हैं। शाश्वत क्या? नित्य क्या? अशाश्वत क्या है? इस लोक में जीव हैं। अजीव है। धर्म-अधर्म-आकाश एवं काल आदि छः ही द्रव्य है। पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष आदि सभी का ज्ञान करना लोक भावना है।

छः ही द्रव्यों के लिये लोक आधारभूत है। जहाँ ये छः द्रव्य पाये जाते हैं वह लोक है। यह लोक त्रस और स्थावर जीवों से खचाखच भरा हुआ है। त्रस जीव तो सिर्फ त्रसनाड़ी में और स्थावर जीव त्रसनाड़ी व स्थावरनाड़ी दोनों में होते हैं। षट्द्रव्यमयी इस लोक में जीव स्वयं कर्मों का कर्ता है और स्वयं ही उन कर्मों का फल भोगता है।

इस लोक को न किसी ने बनाया है और न ही कोई उसका रक्षक व संहारक है। लोक न तो कभी नया उत्पन्न हुआ है और न कभी इसका अंत होने वाला है, किन्तु अनादि अनन्त है तथा जीव-अजीव द्रव्यों से भरा हुआ है। यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अवस्थित है और नित्य है। अतः उसका कभी अंत होने वाला नहीं है।

लोक का षट्द्रव्यात्मक स्वरूप समझने का सार यही है कि हम उस स्वरूप पर विचार करें, जिस लोक में हम रहते हैं और जिन पुद्गलों के सहारे हम सुख दुःख आदि का अनुभव करते हैं, ये सब पर हैं। पुद्गल हैं, जड़ हैं। लोक में चेतन सिर्फ जीव है। जीव ही अपनी सद-असद् वृत्तियों के कारण कर्मों का उपार्जन करता है और फिर वह उनका फल भोगता है। इस विशाल लोक में यह आत्मा अनन्त-अनन्त जन्म-मरण कर चुका है। कभी नरक में, कभी निगोद में और कभी स्वर्ग की उच्चतम भूमिका तक चला गया है। लेकिन जब तक आत्म स्वरूप की पहचान नहीं होगी, तब तक यह भ्रमण ही करता रहेगा। इस अनन्त लोक यात्रा का अंत नहीं आयेगा। यह लोक श्रद्धा अर्थात् लोक स्वरूप का विश्वास आत्मा को वैराग्य और निर्वेद की ओर ले जाता है। लोक की विचित्र स्थितियों का अवलोकन, मनन करने से हमारा मन धर्म के प्रति, जिन वचनों के प्रति श्रद्धाशील बनता है। जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाने के मार्ग की खोज करता है। लोक भावना अनादिकालीन लोक यात्रा का अंत खोजने की कुंजी है। लोक का स्वरूप समझकर हम भी भव भ्रमण से मुक्त होने का प्रयत्न करें, यहीं इसे समझने का सार है।

## बोधि दुर्लभ भावना-सही बोध प्राप्त करे

दुर्लभ नित्य-निगोद से व्यवहार में है भावना,  
दुर्लभ्य इस संसार में है कठिन नरतन पावना।  
दुर्लभ्य यथा ज्ञान दुर्लभ बोधि निज का पावना,  
अतएव आत्महित करो, भज नित्य बारह भावना ॥

धन संपत्ति और अन्य सांसारिक सुख बहुत दुर्लभ नहीं है। दीर्घकाल की संसार यात्रा में मुझे वे सारे पदार्थ अनेक बार मिले हैं। परन्तु अपने को पहचानने का यथार्थ ज्ञान मुझे एक बार भी प्राप्त नहीं हुआ। इस जगत में स्व-पर की सही पहचान ही सबसे दुर्लभ है। यथार्थ का तात्पर्य यह है, जो परमार्थ से परिपूर्ण हो। जो अनुभवगम्य हो। यथार्थ को चर्म चक्षुओं से नहीं, हिये की आंखों से ही देखा जा सकता है।

संसार एक अनन्त प्रवाह है। नाना योनियों व गतियों में भटकता हुआ प्राणी, अत्यन्त दुःख व वेदना भोगता हुआ इधर से उधर परिभ्रमण करता रहता है, उसे पुनः धर्म का सहारा मिलना बहुत ही कठिन है। जैसे समुद्र में गिरा हुआ रत्न पाना अत्यन्त दुर्लभ है। वैसे ही संसार समुद्र में भटकते हुए मनुष्य जन्म को पाना अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि कर्मों का विपाक-भोग बड़ा सघन है, उस कर्म विपाक के कारण हमारी यह आत्मा एक-एक योनि में असंख्य-असंख्य व अनन्त-अनन्तकाल तक भटकती रही है। एक-एक योनि में कितना समय बिताया उसकी कोई गणना हम नहीं कर सकते।

यह संसार लोक अपरिमित है। जीवों के जन्म लेने की योनियाँ भी अपरिमित है व काल भी अपरिमित है। इस अपरिमित लोक में जीव एक योनि में अपरिमित काल तक जन्ममरण करता रहा है। जब कभी यह जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ तो वहाँ असंख्यात काल तक एक ही पृथ्वी ( सूक्ष्म एवं बादर काय ) में जन्म लेता रहा, मरता रहा, फिर वहीं जन्म लेता रहा। इस प्रकार वहाँ से असंख्य काल के बाद निकला तो अपकाय में, फिर तेजस काय में, फिर वायुकाय में, इस प्रकार एक-एक काय में असंख्य बार असंख्य जन्म-मरण की घाटियों को पार करता हुआ, कभी ऐसी महाघाटी में पहुँच गया कि वहाँ तो बस, उसकी कायस्थिति व भव स्थिति की कल्पना ही रोमांच पैदा कर देती है। यह घाटी है वनस्पति काय और वह भी निगोद। निगोद वह महाघाटी है जिसमें फंसने के बाद जीव अनन्तकाल तक उसी में चक्कर काटता रहता है। साधारण वनस्पति की स्थिति बड़ी विचित्र है। वहाँ एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं। ओहो! शरीर एक छोटा सा, जीव अनन्त। वे एक साथ श्वास लेते हैं, वह एक साथ मरते हैं। जन्म-मरण का क्रम निरन्तर चालू रहता है। एक अन्तर्मुहूर्त में 65536 भव कर लेते हैं। वहाँ अनन्त काल अनन्त जन्म मरण करके जीव प्रत्येक वनस्पति में आता है।

इस प्रकार अनन्त-अनन्त जन्म-मरण करने के बाद यह जीव स्थावर योनि से निकलकर त्रस जाति में आता है। वहाँ भी दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय व चार इन्द्रिय वाला जीव बनकर अनेक-अनेक जन्म-मरण करता रहता है। प्रत्येक जीव की वहाँ भी संख्यात-संख्यात हजार वर्ष की उत्कृष्ट काय स्थिति है। कर्म का कुछ भार हल्का होने पर वहाँ से निकलकर पंचेन्द्रिय जाति में आता है। पंचेन्द्रिय जाति में आकर भी तिर्यच एवं नरक योनियों में असह्य दुःख व घोर वेदना भोगता है। इस प्रकार इस अनन्त संसार में अनन्तकाल तक अनेकानेक जीव योनियों में आत्मा भटकता रहा। सर्वत्र दुःख, वेदना व त्रास पाता रहा, किन्तु कहीं भी इसे धर्म का श्रवण नहीं मिला। कर्मों के संग से कर्मों के कारण इस तरह अनन्त-अनन्त वेदना भोगते हुए यह दुःखी जीव मनुष्येतर योनियों में भटकता रहा और कष्ट पाता रहा। अशुभ कर्मों का प्राबल्य कुछ कम होने पर मनुष्य जन्म योनि में आकर उत्पन्न हुआ। अनन्त-अनन्त भव भ्रमण करने के बाद मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। अतः यह महादुर्लभ है। सब गतियों में श्रेष्ठ है। धर्म करने का पूर्ण अवसर सिर्फ मनुष्य जीवन में ही मिल सकता है।

**चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणों।**

**माणुसत्तं सुडु सद्धा, संजमंपि यंवीरियं।।**

संसार में सभी जीवों के लिये चार बातें परम दुर्लभ हैं। मनुष्य जन्म, धर्म श्रुति, श्रद्धा और संयम में पराक्रम। ऐसे दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर प्रमाद, आलस्य व भोगविलास में जीवन को बर्बाद कर लेता है, वह कितना मूर्ख है जो सोने की थाली में मिट्टी भरता है। कीचड़ से सने पैरों को धोने के लिये अमृत को बहाता है। हाथी की पीठ पर ईधन ढोता है और कौआ उड़ाने के लिये चिंतामणि रत्न को फैंकता है। यद्यपि संसार में ये चीजें बहमूल्य हैं पर मनुष्य जीवन की गरिमा के सामने तुच्छ हैं। इस जीवन का लक्ष्य बहुत ऊँचा है, यह शरीर बड़ा मूल्यवान है। इस दुर्लभ शरीर के द्वारा ही उत्तम व अनन्त सुखों की प्राप्ति की जा सकती है।

संसार भ्रमण का हेतुभूत मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के कारण ही जीव चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता है। यदि एक बार सम्यक्त्व रूप बोधि की प्राप्ति हो गई तो ही मिथ्यात्व का मूल कट सकता है।

ज्ञानी कहते हैं कि संसार में सम्यक्त्व रत्न बोधि की प्राप्ति अत्यन्त-अत्यन्त दुर्लभ है। यदि मिथ्या संगति, अहंकार या प्रमादवश यह रत्न हाथ से छूट गया तो फिर संसार समुद्र में डूब जायेगा, पुनः बोधि मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। अतः सम्यक्त्व के दोष, बोधि के नाशक जो तत्त्व हैं, उनसे सदा बचते हुए सम्यक् दर्शन की रक्षा करें। बार-बार यह चिन्तन करें कि यह बोधि रत्न पुनःपुनः मिलना सुलभ नहीं है।

इस प्रकार इन बारह भावनाओं का सम्यक् चिंतन हर मुमुक्षु जीव को प्रतिदिन करना चाहिये। ये भावनाएँ हमें भोगों से निवृत्त करती है। वैराग्य-भावों में सरोबर करती है। हमारे जीवन को सुन्दर व पवित्र बनाती है। हमें सही जीवन जीने की कला सिखाती है।

### भावना भव नाशिनी, भावना भव-वर्धिनी

भावना ही भवों का नाश करती है। भावना ही भवों को बढ़ाती है। अतः हे आत्मन्! यदि तुम्हें सच्चे सुख व सच्ची शांति को पाना है, जन्म मरण के दुःखों से छूटना है तो संसार की असारता, अनित्यता, अशरणता को समझकर उन पर चिन्तन मनन व अनुप्रेक्षण कर मुक्त होने का प्रयत्न करना होगा। यह सब एक दिन या एक वर्ष में नहीं होगा। जब तक इस जीव को अपने स्वरूप का भान नहीं होगा, तब तक हमें सतत् अनुप्रेक्षण करना होगा।

## मंगल भावना

मैं शुद्ध परमात्म-स्वरूप आत्मा हूँ।

सभी प्राणी मेरे मित्र हैं, मेरा किसी से वैर विरोध-शत्रुता नहीं है।

मैं सभी जीवों को खमाती हूँ, खमाती हूँ, खमाती हूँ।

सभी जीव मुझे क्षमा करें, क्षमा करें, क्षमा करें।

सभी जीवों के साथ मेरा मैत्री भाव है, मैत्री भाव है, मैत्री भाव है।

किसी भी जीव के साथ मेरा वैर भाव नहीं है, वैर भाव नहीं है, वैर भाव नहीं है।

सब जगत का कल्याण हो, कल्याण हो, कल्याण हो।

संसार के सभी जीव, पर हित करने में रत हों, रत हों, रत हों।

संसार के सभी जीव स्व-हित में लीन बने, लीन बने, लीन बने।

संसार के सभी जीवों के सभी दुःखों का नाश हो, नाश हो, नाश हो।

सर्वत्र सभी जीव सुखी हों, सुखी हों, सुखी हो।

ऐसी मेरी सदैव मंगल भावना बनी रहें।

मुझको जिनेन्द्र ऐसा, श्रावक रत्न बनाना।

मैं हूँ शरण तुम्हारी, आशा सफल बनाना।

हो ज्ञान की पिपासा, गहरी समुद्र जैसी।

तुंगिया पुरी के श्रावक, तत्त्व रसिक बनाना।

**अठारह पाप-** छद्मस्थ अवस्था में हर साधक से प्रमाद वश, उपयोग चूक जाने से भूलें होती रहती है। पर साधक का कर्तव्य है कि सदैव अपनी उन भूलों को याद करें। अपने द्वारा की गई गलतियों का पश्चाताप करें। खेद करें तथा पुनः नहीं करने का संकल्प करें। व्यवहार में यदि किसी को क्लेश पहुँचा हो तो उनसे क्षमा-याचना करें।

कभी कभी व्यर्थ की गणों में, व्यर्थ की बातों में भी मन मुटाव हो जाता है, पर जीव यदि सजग रहे, रोज चिंतन-मनन व अनुप्रेक्षण करे तो कई पापों से बच सकता है।

प्रत्येक साधक को अठारह ही पापों की विशेष रूप से गवेषणा करके आलोचना व क्षमता क्षमापना प्रतिदिन करनी चाहिये। ये 18 ही पाप संसार के मूल हैं। इनसे बचना बहुत जरूरी है। इन पापों को करने से हमारी आत्मा कर्मों के बोझ से भारी बन जाती है।

जैन कुल में हमने जन्म लिया। ऊँचे संस्कार मिले हैं। सद्गुरुओं का सुन्दर योग मिला, धर्म श्रवण का अवसर मिला। अतः हिंसा के बड़े कार्य, बड़ा झूठ, बड़ी चोरी, व्यभिचार, परिग्रह आदि पापों से हमें बचना चाहिये। आधुनिकता के परिवेश में आज हममें अनेक विकृतियाँ पनपने लगी हैं। सभ्यता और कुलीनता का जामा पहनकर हम इन पापों को अनेक प्रकार से करने लग गये हैं। लोभ और परिग्रह आदि को तो हमने दुर्गुण मानना ही बंद कर दिया है। शरीर निर्वाह और परिवार संचालन के कारण न चाहते हुये भी हमसे अनेक प्रकार के हिंसादि के कार्य प्रतिदिन होते रहते हैं। परन्तु मेरे लिये यह आवश्यक है कि मैं संकल्पपूर्वक किसी भी जीव की हिंसा न करूँ। झूठ न बोलूँ। चोरी न करूँ। अनावश्यक संग्रह न करूँ। अविवेक न रखूँ। घर का प्रत्येक कार्य यतना से करूँ। अपने किये हुये दुष्कृत्यों का पश्चाताप करके आत्मा को पुनः धर्म में स्थापित करूँ। फिर से वैसी भूलें न करने का संकल्प करूँ। हम दूसरों की भूले देखने में हजार आँखों वाले बन जाते हैं, पर स्वयं की गलतियाँ प्रायः हमें नजर नहीं आती। दूसरों के दोष देखते समय हमारी आँखें खुल जाती हैं और अपने दोष देखने में आँखें, प्रायः बंद हो जाती हैं। हमारे मन में अपनी बुराई देखने पर इतनी हलचल नहीं होती, उससे अधिक दूसरों की बुराई से होती है। खुद की भूलें जब नजर में आती हैं तभी दूसरों की भूले बर्दाश्त हो सकती हैं। समझ में आ जाने पर भी अपने दोषों को छिपाना मायाजाल है। भूलों को स्वीकार करना आत्मार्थी का लक्षण है।

## अठारह पापों की आलोचना

हे आत्मन्! तू संसार की समस्त वासनाओं का परित्याग कर। निरन्तर अध्यात्म भावों में लीन रह। सबको आत्म तुल्य समझ। सब पर समान भाव रख। धन, पुत्र, स्वजन, शरीरादि में ममत्व बुद्धि मत रख। ममता को हटाये बिना समता नहीं आ सकती। जब तक हमारा हृदय व मन पवित्र नहीं होगा तब तक जीवन सुन्दर कैसे बन सकता है? मन की अपवित्रता धर्म की तेजस्विता को दबा देती है। पवित्र मन ही पवित्र जीवन का कारण है। वास्तविक आनन्द त्याग व संयम से मिलता है। भाव बदलते ही भव बदल जाता है। धर्म की इमारत हमारे भावों की बुनियाद पर खड़ी होती है। जैन धर्म में सारा ही खेल भावों का है। हमारे कलुषित परिणाम हमारा अहित करते हैं। अतः हमें अपने जीवन को पवित्र बनाना है तो पापाचरण से बचना चाहिये। इन अठारह ही पापों को समझकर उनका हमें त्याग करना है। अपने कृत पापों की बार-बार आलोचना व पश्चाताप कर अपनी आत्मा को शुद्ध बुद्धि निर्मल व पवित्र बनाना है।

पापों का फल एकला, भोगा कितनी बार।

कौन सहायक था हुआ, करले जरा विचार ॥

1. अहिंसा व्रत:- हे प्रभु! मैंने जानते-अजानते, आते-जाते, खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, हंसते-रोते अपनी किसी भी क्रिया द्वारा मन-वचन-काय से चार गति के चौरासी लाख जीव योनि में किसी भी जीव को सताया, थकाया, हराया, क्रोधवश ताड़ना की, किसी के प्राणों को जकड़कर बांधा, अधिक बोझ लादा, अंग छेदन किया, समय पर भोजन एवं पानी की सार संभाल नहीं की। बिना देखे अनाज पिसाया, सड़ा हुआ धान उपयोग में

लिया, पानी यतना से नहीं छाना, ईंधन आदि बिना देखें जलाया। रास्ते चलते फूल पत्ती आदि तोड़ी। हिंसाकारी सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग किया। यतनापूर्वक घर का कार्य नहीं किया। स्त्री, पुरुष, भाई या सेवक आदि के साथ अभ्रद व्यवहार किया। माता-पिता, वृद्ध रोगी आदि की अच्छी तरह सेवा शुश्रूषा नहीं की। निरपराध त्रस प्राणियों की हिंसा की। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु व वनस्पतिकाय के जीवों का मर्यादाहीन आरम्भ सभारंभ किया। संकट के समय आत्मघात की इच्छा की। अपने कटु शब्दों से दूसरों का जीना हराम कर उन्हें आत्मघात करने के लिये बाध्य किया, यानी उनको इतना दुःख दिया कि वह मरण को चाहने लगा। किसी के दुःख देने पर उसके मरण की कामना की। लड़ाई-झगड़े में रस लिया। किसी को कटु शब्दों के द्वारा मानसिक पीड़ा दी। अज्ञान व प्रमाद के वशीभूत बन जिन-जिन जीवों को मैंने कष्ट दिया, जीवन से रहित किया। उन सभी जीवों से मैं त्रियोग से बारम्बार खमाती हूँ?

हे प्रभु! दिवस भर में अथवा रात्रि भर में मन-वचन-काय से स्ववश, परवश, जाने-अनजाने, क्रोधवश, मान वश, मायावश, लोभवश, अज्ञानवश व एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक किसी भी जीव को, किसी भी परिस्थिति में सताया हो, तड़फाया हो, पीड़ित किया हो, छेदन-भेदन किया हो, मारणान्तिक कष्ट पहुँचाया हो, नाना प्रकार के संक्लेश भाव करके, मिथ्यात्व भाव करके, विपरीत भाव करके आत्म स्वभाव का घात किया हो, पर के क्लेश का भाजन बना हो तो मेरी ऐसी दुष्ट प्रकृति का नाश हो। वह दिवस मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब मैं छः काय के जीवों के वैर बदले से निवृत्त होऊँगी। सभी जीवों से अन्तर भावपूर्वक, आत्म साक्षी से मैं हार्दिक क्षमा याचना करती हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें। यद्यपि मैं इस काबिल नहीं की किसी को क्षमा दे सकूँ। लेकिन मैं सभी को अपनी आत्मा के समान समझती हूँ। इस लोक के सभी जीव मेरे मित्र बंधु समान हैं। किसी भी जीव के प्रति मेरा द्वेष व घृणा का भाव नहीं है। मैं सबको खमाती हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें, क्षमा करें, क्षमा करें।

**2. सत्यव्रतः-** सत्य ही भगवान् है, सत्य वचन शुद्धि है, पवित्र है, कल्याण का कारण है। सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है। सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं। सत्य का आश्रय लेने वाले जीव का इहलोक व परलोक दोनों सुधरता है। वह अनेक संताप व विपत्तियों से बच जाता है। असत्य के सेवन करने वाले के हृदय में कभी शांति नहीं रहती। झूठ प्रकट होने का सदैव भय बना रहता है। झूठे व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता, उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती, उसकी दुर्गति होती है।

सत् स्वरूप आत्मा का भान नहीं होने से असत् रूप विकल्प होते हैं। सभी विकल्प, इच्छाएँ, वासनाएँ आदि असत् हैं, झूठे हैं। मन गुप्त होने पर सत्य का ज्ञान होने पर ही हमारी असद् रूप प्रवृत्तियाँ रुक सकती हैं। जो सत्य के तप में अपने को दिन रात तपाता है, वही सच्चा ज्ञानी है।

अहो प्रभु! मैंने अज्ञान व मोह के वश होकर किसी पर झूठा लांछन लगाया, किसी को कटु वचन बोले, गाली दी, गपशप आदि में झूठ बोला, समाज, परिवार व राष्ट्र के साथ विश्वासघात किया, किसी की गुप्त मर्मकारी बात प्रकट की। किसी को गलत सलाह दी, झूठें दस्तावेज लिखे, झूठी गवाही दी, किसी की निंदा-चुगली की। माता-पिता व गुरुजनों के सामने अपमानकारी भाषा का प्रयोग किया। किसी को अपमानित करने की बुद्धि से हँसी-मजाक किया, वर-वधु के विवाह को जोड़ने या भंग करने के लिये उनके संबंधों में मिथ्या प्रचार किया, अपनी झूठी प्रशंसा की। वचन देकर उसका पालन नहीं किया। प्रतिज्ञा लेकर भंग की। ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो।

पापी को पापी, चोर को चोर, जुआरी को जुआरी व अधम को अधम कहकर उसका दिल दुःखाया, जिससे उसके मन में दुर्भाव उत्पन्न हुआ। किसी को ऐसे चुभते शब्द मैं कभी नहीं बोलूँगी। कठोर शब्द नहीं बोलूँगी। हितकारी, मधुर व परिमित शब्द ही सदैव कहूँगी। कारण कि शस्त्र का घाव भर जाता है। पर वचन का घाव कभी

नहीं भरता है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जो तीर की तरह हृदय को बींध देते हैं। मैं ऐसे शब्द कभी नहीं बोलूँगी, जिससे पारिवारिक व सामाजिक कलह बढ़े या किसी की आत्मा को दुःख हो।

हे प्रभु! मिथ्यात्वश, अज्ञानवश, क्रोधादि कषाय के वश होकर मैंने असत् कल्पना, असत् विचारना, असत् संकल्प-विकल्प कर असत् स्वरूप का पोषण किया हो। असत्, कड़वी, कषायली, तीक्ष्णकारी, छेदनकारी, भेदनकारी, मार्मिक भाषा बोलकर या अकल्याणकारी भाषा बोलकर किसी को क्लेश का भाजन बना हो, तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बारम्बार धिक्कार हो।

**काया थारे कारणे, पाप किया अनेक।**

**मोह अंधा होय रहया, नहीं राखियों विवेक।।**

**3. अदत्तादान व्रतः-** जो-जो प्रवृत्तियाँ स्वार्थ वश, स्वामी की आज्ञा के बिना छुपाकर की जाय, दूसरों के अधिकारों का अपहरण करने के लिये की जाय और जिससे अनुचित लाभ प्राप्त किया जाय वह सब अदत्तादान है, चोरी है।

जो पदार्थ मेरा नहीं है, दूसरों के अधिकार का है, उसे मैंने गुप्त रीति से, मालिक की आज्ञा के बिना ग्रहण किया, किसी को चोरी करने की प्रेरणा दी, चोरी का माल खरीदा। इन्कमटेक्स व चुंगी आदि की चोरी की, धन संपत्ति को दबाकर दिवाला निकाला, अच्छा माल बताकर खराब दिया, मिलावट की। किसी की रखी हुई धरोहर वापस नहीं लौटाई। रिश्वत दी अथवा ली। संस्थाओं का हिसाब ठीक से नहीं किया। मर्यादा से अधिक वस्तुओं का संग्रह किया। पर द्रव्य, पर क्षेत्र में रमण किया। पर द्रव्य में सुख मानकर, पर द्रव्य में ही प्रवृत्तियाँ की हो तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो।

हे प्रभु! आपकी आज्ञानुसार आत्म-ज्ञान, आत्म-ध्यान, आत्म-विचार व आत्म-समाधि के अलावा अन्यथा रूप मन-वचन काय से विषय-कषाय में, आरम्भ-समारंभ व परिग्रह आदि में आसक्त हुई हों, मूर्च्छित हुई हों, उन्हें अपना माना हों, इष्ट माना हो, अपनी मर्यादा का त्यागकर अन्य को ग्रहण किया हो तो, ऐसी मेरी दुष्ट प्रकृतियों का बारम्बार नाश हो। हे प्रभु! वह दिवस मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब मैं सर्वथा अन्तरंग बहिरंग परिग्रह-वैभव को अन्य समझकर मात्र ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की आराधना कर जीवन को सार्थक बनाऊँगा, वह दिन मेरे लिए परम कल्याणकारी व मंगलकारी होगा।

**4. ब्रह्मचर्य व्रतः-** काम वासना मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इसके लिये अच्छे से अच्छा मनुष्य भी चाहे जैसा अकृत्य करने का साहस कर लेता है। उस समय वह हित-अहित का विवेक खो देता है, आत्मा-भावों को भूल जाता है। इन्द्रिय समूह बड़ा बलवान है। ज्ञानी, ध्यानी, त्यागी, तपस्वी व योगी को भी कभी-कभी चंचल बना देता है। जैसे सुन्दर फूल सहज रूप से दर्शकों को मुग्ध कर देता है, वैसे ही स्त्री को देखकर, उसकी सुन्दरता पर बार-बार नजर डालने से या उसके हाव-भाव, विलास, अंग-प्रत्यंग, रूप, लावण्य का चिंतन करने से, सुदृढ़ मन भी चंचल हो उठता है। अतः ज्ञानियों ने इसके लिये नव वाड़ बनाई है। नव वाड़ को समझकर ही इस व्रत का पालन किया जा सकता है।

ज्ञानी भगवन्तों ने मैथुन को पापों का राजा कहा है। मैथुन क्रिया में ज्ञानियों ने हिंसा बताई। मैथुन सेवन करने वाला उत्कृष्ट नौ लाख सन्नी जीवों की हिंसा करता है। स्त्रियों की योनि में बेइन्द्रिय आदि त्रस जीव असंख्य उत्पन्न होते व मरते हैं। एक बार के संभोग के समय उन सभी जीवों का नाश हो जाता है। इस प्रकार से मैथुन कार्य हिंसक है, मोह-मद को बढ़ाने वाला व सभी बुराइयों की जड़ है।

हे प्रभु! मोह के वशीभूत होकर मैंने काम-भोग की तीव्र अभिलाषा की, पर पुरुष के साथ गमन किया, गुड्डे-गुड्डियों का विवाह किया। काम-भोग संबंधी बुरे संकल्प किये। स्त्री-पुरुषों के अंगोपांग को राग भाव से देखा।

तप करके देवी-देवताओं से भोगों की याचना की। कामोत्तेजक गंदे गीत गाये या सुनें। कामोत्तेजक गंदा साहित्य पढ़ा। सिनेमा, टी.वी. आदि देखा या मादक द्रव्यों का सेवन किया। भोग में सुख माना हों, तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। हे प्रभु! मैंने पूर्व में भोगे हुए भोगों का बार-बार स्मरण किया हो, वर्तमान में किसी के रूप लावण्य, अंग-प्रत्यंग का भोग किया, कामोत्तेजक दृश्यों को देखा, कामोत्तेजक कथा कही या सुनी हो, उसमें आनन्द माना हो। स्व पुरुष के साथ मर्यादा नहीं की हो। पर पुरुष को पिता-भाई नहीं समझा हो, तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। वह दिवस मेरा परम कल्याणकारी होगा, जिस दिन मैं आत्म-ज्ञान, आत्म-ध्यान व आत्म स्वरूप में ही रमण करूँगी, वह दिन मेरा धन्य-धन्य होगा।

**5. अपरिग्रह व्रत:-** ब्राह्म पदार्थों के प्रति मेरापन रखना परिग्रह है। ममत्व रूपी परिग्रह की जड़, इच्छा व मूर्च्छा है। परिग्रह समस्त दुःखों का कारण व पापों का मूल है। परिग्रह से जीव स्वयं भी दुःखी होता है तथा दूसरों को भी दुःखी करता है। परिग्रह प्राप्त होने से पहले भी दुःख देता है, प्राप्त होकर भी दुःख देता है व छूटकर भी दुःख देता है, यह इसकी विशेषता है।

हे आत्मन्! ममता बुद्धि के कारण तुमने वस्तुओं का खूब अनुचित संग्रह किया, आवश्यकता से अधिक संग्रह किया। खाने में, पीने में ओढ़ने, बिछाने, पहनने आदि के साधनों में खूब आसक्त हुई, आरम्भ-परिग्रह, विषय-कषाय आदि में गृद्धित हुई। पद, वैभव, अधिकार आदि का गर्व किया। एक तिनका भी मेरे साथ जाने वाला नहीं? मुझे खाने को चार रोटी, पहनने को चार कपड़े व रहने को छोटा सा मकान चाहिये, पर मैंने मोह के वश, खूब संग्रह किया। ओ हो कब मृत्यु आ जायें, इसका कोई भरोसा नहीं। व्यर्थ ही मैंने पाप का भार अपने माथे बांध लिया। इच्छाएँ बढ़ाना दुःख और घटाना सुख है। इच्छाएँ घटते ही आवश्यकताएँ घट जाती हैं। आवश्यकता घटने से ही सच्चा सुख मिलता है। अतः अब भी मुझमें समझ आई है तो मैं आवश्यकता से अधिक संग्रह न करूँ। ज्ञानियों ने परिग्रह को विनाश का मूल कारण कहा है, दुःखों का घर कहा है। क्षणिक सुख व बहुत दुःखों का कारण कहा है। अतः वह परम कल्याणकारी दिवस मेरा कब होगा, जब मैं अन्तरंग एवं बहिरंग परिग्रह को दुःख का कारण समझकर, उससे निवृत्त होऊँगी तथा मर्यादा उपरान्त सभी परिग्रह का त्याग करूँगी। वह दिन मेरा धन्य-धन्य होगा।

**6. क्रोध:-** क्रोध एक अवगुण है, जो नरक में ले जाता है। आत्मा का पतन करने वाला व प्रीति का नाश करने वाला हमारा शत्रु है। क्रोध हमारे तन को तपाता है, मन को सताता है, रक्त व मांस को सुखाता है, आत्म-भान भुलाता है। क्रोधी मनुष्य स्वयं भी जलता है व दूसरों को भी जलाता है, क्रोध के वेग में सारा स्नेह सूख जाता है, तथा अपने भी पराये बन जाते हैं। क्रोध से क्रोध भभकता है। क्रोध का जवाब शांति से देने पर वह घटता है। अतः हे आत्मन्! कोई तुझ पर क्रोध करता है तो भी तू क्षमा को धारण कर। कहीं भी, कौसी भी विपरीत परिस्थिति सामने हो, उस समय उसे बाधक जानकर क्रोध किया, चिड़चिड़ किया, आवेश में आकर बुरा भला कहकर स्वयं के स्वरूप का घात किया व पर को भी दुःखी किया हो तो ऐसी दुष्ट प्रवृत्ति का नाश हो। अन्तर में जब तक कषायाग्नि धधकती रहेगी, तब तक तुझे एयर कंडीशन में भी शांति नहीं मिल सकती। ऐसा समझकर, हे आत्मन्! तू क्षमा भाव को धारण कर।

**7. मान:-** अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। वह सद्गुणों के विकास में बाधक बनता है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि अनेक दुर्गुणों की वृद्धि करता है। जीवन रूपी दूध को अहंकार रूप फिटकरी का टुकड़ा अपेय बना देता है। मान के खातिर व्यक्ति क्या नहीं करता। मान भंग होने पर व्यक्ति तिलमिलाता है, क्रोधित होता है, तड़फता है। अहंकारी व्यक्ति किसी के सामने नहीं झुकता। अहंकार सदा अपने से हीन व्यक्ति को देख कर होता है। अहंकार जीवन को कठोर बना देता है। अहंकारी व्यक्ति सदा रिक्त रहता है। अहं की भावना से व्यक्ति में अकड़ पैदा होती है। अकड़ बनाये रखने के लिये व्यक्ति पापाचार करता है। आज का व्यक्ति मंदिर व स्थानकों में जाकर जाप करता

है और बाहर आकर पाप करता है। यही कारण है कि दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी नर से नारायण नहीं बन सकता। अहंकारी व्यक्ति प्रभु से साक्षात्कार कभी नहीं कर सकत है।

ज्ञानी कहते हैं कि इस मायामय संसार में पग-पग पर फिसलन है, बहकावा है, भूलभूलैया है। अतः ओ मंजिल के राही संभल कर चलना, फिसल मत जाना, बहक मत जाना। अहंकार का विष तुम्हारे जीवन में प्रवेश न कर पाये, इसका हर पल, हर क्षण ध्यान रखना।

हे प्रभु! अज्ञान व मिथ्यात्व के वश मैंने अहंकार किया। अपने आपको ज्ञानी ध्यानी व मौनी समझा, ईमानदार समझा, विचारक समझा, सत्यवादी समझा और दूसरों को हीन, तुच्छ, बुद्ध व मूर्ख समझकर अपने अहंकार का पोषण किया हो तो ऐसी मेरी दुष्ट प्रवृत्ति का बारम्बार नाश हो। वह दिन मेरा परमकल्याणकारी होगा, जब मेरे जीवन में विनय, विवेक व वैराग्य के फूल खिलेंगे। वह दिन मेरा परम मंगलकारी होगा।

**8. माया:-** माया बहुत ही खराब होती है। छल, कपट, प्रवंचना आदि माया कि पर्यायवाची शब्द है। झूठ, चोरी, धोखा, दगा, ठगाई आदि वृत्तियों की जननी माया है। माया दिखाई नहीं देती। छुपकर वार करती है। मुख में राम, बगल में छुरी अर्थात् मायावी व्यक्ति मुंह से तो बड़े मीठे बोलते हैं, पर हृदय विष से भरा होता है। यह माया संसार में परिभ्रमण कराने वाली हैं। हृदय की वक्रता का नाम ही माया है। जिसका हृदय सरल होता है, मन व वाणी कपट रहित होती है, तथा जिसकी कथनी व करनी में एकरूपता होती है वही सच्चा धर्मात्मा है। हृदय की सरलता ही धर्म है। धर्म मन में, मन की सरलता में, मन की सहजता में व मन की पवित्रता में होता है। धर्म बाहर में नहीं, भीतर में होता है। जिस व्यक्ति की जितनी-जितनी कषायें मंद होती है, वह व्यक्ति उतना ही धर्मात्मा होता है।

हे प्रभु! मैंने अपने जीवन में छल किया हो, कपटता की हो, धूर्तता की हो। मन में कुछ, वचन में कुछ व काय में कुछ इस प्रकार की कुटिलता धारण की हो तो ऐसी मेरी दुष्ट प्रकृतियों का नाश हो। वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब मेरा हृदय निष्कपट बनेगा। मेरी कथनी व करनी एक होगी।

**9. लोभ:-** लोभ एक ऐसी अंतहीन भूख है जो कभी भी शांत नहीं होती अपितु शांत करने के प्रयत्न में दुगुनी, चौगुनी बढ़ती ही जाती है। आदमी का अंत हो जाता है, पर लोभ का कभी अंत नहीं होता। हम अपने इकट्ठे किये हुये धन को भोग सकेंगे या नहीं, पर यह निश्चित है कि इच्छाओं एवं भोग के वशीभूत बनकर जिन-जिन पाप कर्मों को हमने बांधा है, उनको हमें जरूर भोगना पड़ेगा। कोठे भरे पड़े हैं, बैंक में बेहिसाब बैलेन्स है, पेटियों में असंख्य पोशाकें हैं, पूंजी इतनी है कि सात पीढ़ी खायें तो भी समाप्त न हों, किन्तु अभी और चाहिये का अंत नहीं। लोभ पिता है बुराइयों का, खजाना है विकृतियों का, मुनीम है कष्टों का व दलाल है बीमारियों का। तृष्णा का कभी भी अंत नहीं होता। अतः हे आत्मन्! ऐसा समझकर तू संतोष धारण कर। हे प्रभु! अज्ञान अवस्था में मैंने खाने की, पीने की, आरम्भ-परिग्रह की, धन-वैभव, पद, प्रतिष्ठा व यश की खूब चाहना की। इन्हीं-इन्हीं की प्राप्ति के लिये नाना-प्रकार के संकल्प विकल्प कर तृष्णा बढ़ाई। इन्हीं में गृहित व मूर्च्छित हुई हो तो ऐसी मेरी दुष्ट प्रकृति का नाश हो, वह दिवस मेरा परम कल्याणकारी होगा। जिस दिवस मैं संतोष व्रत को धारण करूँगी, वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा।

**10. राग:-** राग मीठा जहर है। प्रतिक्षण यह हमारे स्वभाव का घात करता है। किसी भी पदार्थ के प्रति मोह होना, आसक्ति रूप आकर्षण होना राग है। पौद्गलिक सुख की इच्छा व भोग की अभिलाषा होना राग है। वास्तव में कोई भी भौतिक वस्तु हमारी अपनी नहीं। आज इस पर हमारा स्वामित्व है, कल किसी और का होगा। जब-जब हम कोई वस्तु को मात्र अपनी मान लेते हैं तब राग होता है। जहाँ राग होता है वहाँ व्यक्ति सभी अनर्थ कर सकता है। धन का राग, कुटुम्ब का राग, सत्ता व पद का राग, सभी दुःखों को बढ़ाने वाले हैं। राग चिपकाने का काम करता है। राग के

पोषण के लिये व्यक्ति मान चाहता है, प्रतिष्ठा चाहता है, नाना हथकंडे अपनाता है। राग हमें अच्छा लगता है, पर यही दुःखों का मूल कारण है।

राग और द्वेष दोनों ही कर्म के बीज हैं। मोह से कर्म बंधते हैं। कर्म से आत्मा देह धारण करती है और देह धारण करने वालों की मृत्यु होती है। अज्ञान व मोह ही जन्म-मरण कराते हैं। जन्म-मरण से दुःख पैदा होता है। बाहर में वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितियाँ, ये न तो सुखदायक होती है और न दुःखदायक। न अनुकूल होती है और न ही प्रतिकूल। मात्र हम अपनी मिथ्या कल्पना से किसी को अनुकूल मानकर राग कर लेते हैं व प्रतिकूल मानकर द्वेष कर लेते हैं। यही कर्म का मूल है, दुःख का मूल है। ज्यों-ज्यों हमारे जीवन में मोह की कमी होती जायेगी त्यों-त्यों रागद्वेष की तीव्रता भी कम होती जायेगी। तभी सच्ची शांति व आनन्द की अनुभूति होगी। अतः हे आत्मन्! राग व मोह के स्वरूप को समझकर, इस ग्रंथि को तोड़ने का प्रयत्न कर।

हे प्रभु! अनन्त संसार सागर में घूमते हुए, नाना प्रकार के पदार्थों में आसक्त हुई हो, गृद्धित हुई हो, मूर्च्छित हुई हो तो ऐसी इस दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। वह दिवस मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब मैं मोह की ग्रंथि का छेदन कर अपने स्वरूप में लीन बनूँगी।

**11. द्वेष:-** द्वेष का अर्थ है- शत्रुता करना, वैर रखना, अमैत्रीपूर्ण व्यवहार रखना। यह राग का जुड़वा भाई है। यह राग के बिना जिंदा नहीं रहता। राग पर से जुड़ता है और द्वेष अपने स्वभाव से अरुचि करवाता है। द्वेष होने पर मनुष्य अंधा हो जाता है। वह जिस पदार्थ व प्राणी को अपने लिये बुरा समझता है, झटपट उसका नाश करने के लिये तैयार हो जाता है।

अज्ञान अवस्था में किसी की सत्ता, संपदा अथवा यश को देखकर मेरे मन में दावानल सुलगा हो, किसी से घृणा की हो, नफरत की हो, ईर्ष्या की हो, अपने स्वभाव से अरुचि की हो किसी से जलन हुई हो तो, ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। जब तक राग-द्वेष का तेल रहेगा, तब तक न चाहते हुये भी घाणी में पिलना पड़ेगा। तेल न रहेगा तो पिलना अपने आप बंद हो जायेगा। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति दुःखी होना नहीं चाहता। परन्तु दुःख के जो-जो कारण प्रभु ने बनाये हैं उन्हें छोड़ना भी नहीं चाहता। बबूल बोते जायें और कांटे नहीं चाहिये यह कैसे संभव है? दुःख नहीं चाहिये तो दुःख के कारणों को समझकर उन्हें छोड़ना होगा तब दुःख स्वतः ही समाप्त हो जायेगा।

**12. कलह:-** सज्जन व्यक्तियों के लिये कलह करना उचित नहीं। कलह और क्लेश से आत्मा के परिणाम बिगड़ते हैं। कलह करने वाले व्यक्ति कभी भी और कहीं भी शांति नहीं पाते। संक्लेश भाव, मिथ्यात्व भाव, विपरीत भाव ये कलह को जन्म देते हैं। दुर्ध्यान से आत्मा की दुर्गति होती है। जीवन में संतोष, धैर्य, सहनशीलता व विवेक नहीं होने से कलह खड़ा होता है। हे प्रभु! भूल व प्रमाद वश मेरी आत्मा ने कर्कश, कठोर, असत्यवचन बोलकर कलह किया हो, झगड़ा किया हो, विद्रोह किया हो, तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बारम्बार धिक्कार हो।

**13. अभ्याख्यान:-** हे प्रभु! मैंने किसी पर झूठा कलंक लगाया हो, मिथ्या आरोप लगाकर दोषारोपण किया हो तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बारम्बार धिक्कार हो।

**14. पैशुन्य:-** ईर्ष्या, द्वेष व अहं की रक्षा के लिये विवेक हीन बनकर अपनी प्रशंसा के लिये दूसरों को नीचा दिखाने के लिये, किसी की चुगली खाई हो, इधर-उधर भिड़ाकर क्लेश उपजाया हो तो, ऐसी मेरी दुष्ट आत्म को बार-बार धिक्कार हो।

**15. पर परिवाद:-** किसी की उन्नति न देख सकने के कारण उसकी झूठी, सच्ची निंदा की हो, उसे बदनाम किया हो, विकथा की हो। स्त्री कथा, देश कथा, राज्य कथा व भात कथा आदि में गृद्धित मूर्च्छित हुई हो तो, ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो।

**16. रति-अरति:-** जगत का कोई भी पदार्थ इष्ट या अनिष्ट नहीं होता। अपने स्वभाव का भान नहीं होने से, पराधीन होकर हम पर वस्तुओं के भोग में रतिभाव करते हैं, जो हमें अनिष्ट लगते हैं उसमें अरति भाव करते हैं। असत् कार्यों में आसक्ति को रति भाव व सत् कार्यों के प्रति उदासीनता को अरति भाव कहते हैं। रति-अरति भावों का पोषण पांचों इन्द्रियों से होता है। पांचों इन्द्रियों के 23 विषय व 240 विकार हैं। मैंने उनमें इष्ट भाव कर रति की हो और अनिष्ट मानकर अरति भाव किया हो। धर्म के कार्य में व शुभ प्रवृत्तियों में प्रवृत्ति न कर उदासीन रही हो तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा, जब मैं धर्म के कार्य में, आत्म-स्वरूप को पाने में पुरुषार्थ करूँगी।

**17. माया:-** मृषावाद कपट सहित झूठ बोला हो, चालाकी से बातें कर किसी को ठगा हो या किसी के साथ लाग लपेट का व्यवहार किया हो जो प्रकट में सत्य दिखाई दे परन्तु वास्तव में झूठ हों। जैसे मैंने तो यह आपके भले के लिये ही कहा है या मुझे रात दिन आपकी ही फिकर रहती है आदि इस तरह छल-कपट करके प्रपंच पूर्वक झूठ बोला हो तो ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। वह परम कल्याणकारी दिन मेरा कब होगा, जब मैं पूर्ण सरल बन अपने मन को पवित्र बनाऊँगी।

**18. मिथ्या दर्शन श्लय:-** मिथ्यात्व समस्त पापों का मूल है। मेरु जितना पाप मिथ्यात्व का है, बाकी 17 पाप राई जितने हैं। मिथ्यात्व जीव को स्वरूप दर्शन नहीं होने देता और जब तक स्व का बोध नहीं होता, तब तक पर पदार्थों का, उनके गुण धर्मों का भी ज्ञान नहीं हो सकता। **कोई मेरा नहीं, मैं किसी का नहीं।** यह शरीर भी मेरा नहीं, तो फिर इन्द्रियाँ मेरी कैसे हो सकती हैं? शरीर से संबंधित कुटुम्ब, पुत्र, पत्नी, मां आदि मेरे कैसे हो सकते हैं? ये सब कर्म के उदय से हमको मिलते हैं। मैंने ही रागादि भाव करके कर्मों का बंध किया। ये रागादि भाव भी मेरे विकारी भाव हैं। पर के संयोग से, पर के निमित्त से पैदा होते हैं। ये सारे ही खेल, कभी राग भाव, कभी द्वेष भाव, भय, रति, हास्य, शोक आदि भाव जीव करता रहता है। यह शरीर कर्म, रागादिभाव सभी संयोगों से उत्पन्न होते हैं। जिनका संयोग होता है, उसका वियोग अवश्य होता है। फिर ये तरे कैसे हो सकते हैं? यहीं भ्रांति है, मोह एवं मिथ्यात्व है। कर्म बंध का प्रबलतम कारण मिथ्यात्व है। इसी से अज्ञान खड़ा होता है। जब जीव को अपने अस्तित्व व पर पदार्थों का बोध हो जाता है तो संसार के कारणों को दूर कर देता है। संसार के कारण भूत मिथ्यात्व का विच्छेद सम्यग् दर्शन से होता है, जब तक जीव भोगों में व पापों में आनन्द मानता है तब तक वह मिथ्या दृष्टि रहता है। सद् विवेक होने पर मोह का चक्र टूटता है। मन पर छाया अज्ञान का पर्दा हट जाता है। मोह का अंधकार दूर हो जाता है। मोह व अज्ञान के इस चक्रव्यूह को तोड़ने के लिये ही इस जीव को सम्यक् पुरुषार्थ करना है। जिसे मोह नहीं, उसे कोई दुःख नहीं होता है। मिथ्यात्व के इस चक्रव्यूह को तोड़ना ही आत्मार्थी का लक्ष्य होता है।

वह धन्य दिवस मेरा कब होगा? जब मेरी अज्ञान व मिथ्यात्व की गांठ गलेगी। संसार का मोह छूटेगा। **मैं किसी का नहीं, कोई मेरा नहीं।** बाह्य में सभी कार्य करते हुये भी मात्र व्यवहार समझकर, अन्तर में जागृत रहते हुए मैं सब कार्य करूँगी।

इस भव, पर भव में मैंने मिथ्यात्व के प्रवर्तन रूप जो भयंकर पाप किया, जिनेन्द्र भगवान के सिद्धान्तों के विरुद्ध भाषण या आचरण किया हो तो, ऐसी मेरी दुष्ट आत्मा को बार-बार धिक्कार हो। मिथ्यात्व रूप अंधकार से अंधी बनी मेरी आत्मा ने अज्ञानवश जिन-जिन पाप कार्यों का संचय किया, कराया व अनुमोदन किया। धर्म के

विरुद्ध आचरण किया, उन सब पापों के लिये मैं गुरु साक्षी व अपनी आत्मसाक्षी से निंदा करके अपनी आत्मा को पवित्र बनाने का प्रयत्न करूँगी। वह दिन मेरा धन्य-धन्य होगा, जब मैं मोह रूपी जाल का नाश कर, कर्म रूपी सांकल को तोड़कर जन्म-मरण रूपी हाट को छिन्न-भिन्न कर भव रूपी कारागार से मुक्त बनूँगी। वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा।

मैंने अनन्तकाल तक भवभ्रमण करते हुये, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जीव, देव, मनुष्य, नारक व तिर्यच योनि के जीव, जलचर, थलचर, खेचर आदि में संज्ञी, असंज्ञी, सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों के क्रोध, मान, माया, लोभ, पांचों इन्द्रियों की वशीभूत बन राग या द्वेष से मारे या पीड़ित किये हो तो मन-वचन-काय से बार-बार क्षमाती हूँ। मेरे वे सभी पाप निष्फल हों, निष्फल हों, निष्फल हों।

इन अठारह ही पापों का मैंने बार-बार सेवन किया हो, कराया हो, अनुमोदा हो, वह मेरा पाप निष्फल हो। मैंने इस भव में बुरा-चिंतन, बुरा भाषण या बुरा कार्य किया हो तो उसकी बारम्बार निंदा करती हूँ, गृहा करती हूँ। इन सभी पापों से रहित होती हूँ। इस प्रकार किसी भी प्रकार से जानते अजानते इन दोषों का सेवन किया हो तो, अरिहंत-सिद्ध गुरु व आत्मसाक्षी से मिच्छामिं दुक्कडं।

हे प्रभु! मैं अज्ञानी, मोही व छद्मस्थ जीव हूँ। अतः मेरे जो जो पाप याद आये, दोष याद आये हैं, वे सभी मैंने कहे हैं, किन्तु जो दूषण व जो पाप मुझे याद नहीं रहे हैं उनकी भी मैं निंदा करती हूँ, गृहा करती हूँ। उन्हें भी वोसिराती हूँ। वे पाप भी मेरे निष्फल हों।

सम्पूर्ण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, पैशुन्य, हर्ष, विषाद, चुगली, निंदा, विश्वासघात और मिथ्यादर्शन रूप कांटे को बार-बार वोसिराती हूँ। अंतिम उच्छ्वास में तीन करण व तीन योग से सभी पापों को वोसिराती हूँ।

मैं प्रकट चैतन्य मूर्ति आत्मा हूँ। जहां राग का प्रवेश नहीं, मोह का प्रवेश नहीं, कर्म का प्रवेश नहीं। देहेन्द्रिय विषयों का प्रवेश नहीं। इन सबसे निराला मात्र चैतन्य मूर्ति आत्मा हूँ। जन्म-मरण, बुढ़ापा, रोग, शोक ये सब मेरे तन के खेल हैं। मैं ध्रुव, शाश्वत आत्मा हूँ। बाहर में कैसी भी परिस्थिति है, तू उनमें मत अटक। साम्यभाव से स्थिर चित्त होकर अन्तरमुख हों। मैं आत्मा हूँ। ज्ञाता दृष्टा रूप आत्मा हूँ। मेरा आनन्द मुझमें है। मेरी शान्ति मुझ में है, जो आत्मानुभूति से प्राप्त होती है। ज्ञान व आनन्द आत्मा की प्रसादी है, जो शरीर व इन्द्रियों से कैसे प्राप्त हो सकती है विकल्प करना मेरा धर्म नहीं है। हे आत्मन्! अन्तरमुख हों। अन्तरमुख होकर शोध कर। जन्म-जन्म के दुःखों से तू मुक्त बन जायेगा। हे आत्मन्! शांत परिणामी होकर, समभावी होकर मात्र अपना ध्यान कर। यही मंगलरूप है, श्रेय रूप है, इसी में अनन्त पुरुषार्थ समाया हुआ है। परम एकाग्रचित्त होकर आत्म अनुभव करें। मैं मात्र चैतन्य मूर्ति आत्मा हूँ।

## उपसंहार

हे जीव! संसार में भटकते, भटकते तुझे इतना काल हो गया है। अनन्तानंत पुद्गल परावर्तन तूने किये हैं। फिर भी तेरी भव परम्परा का, जन्म-मरण का व दुःखों का अंत नहीं हुआ। इन दुःखों का कारण तेरी समझ में नहीं आया। संसार का मूल मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद व योगों का सेवन करके इतना लम्बा काल तूने व्यर्थ ही गंवा दिया। हमें यह मनुष्य भव इतनी बार मिल चुका है, यदि इसकी हड्डियों का ढेर इकट्ठा करें तो अनन्त सागर भी भर सकते हैं। परन्तु अफसोस इस बात का है कि आज तक हमने इस मनुष्य भव के महत्त्व को नहीं समझा। ज्ञानी

कहते हैं कि तूने इस तन को पाया है तो अब उसे निष्फल मत कर । इस भव में तूझे महा-दुर्लभ मोक्ष-साधन रूप जो सामग्री प्राप्त हुई है, उससे इस जन्म-मरण के फेरे को हमेशा-हमेशा के लिए मिटाने का प्रयत्न करके, अपने जीवन को सफल बना ।

यह सदैव चिन्तन करें कि मैं आत्मा हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ, शाश्वत हूँ। ज्ञान-दर्शन व चारित्र मेरे गुण हैं और ये गुण मेरे कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। अग्नि मुझे जला नहीं सकती। पानी मुझे गला नहीं सकता। पवन मुझे उड़ा नहीं सकता। शस्त्र के प्रहार से मैं खंडित होने वाला नहीं हूँ। शस्त्रादि से देह का छेदन हो सकता है, आत्मा का नहीं। देह विनाशी है, मैं अविनाशी हूँ। आत्मा और शरीर दूध व पानी की तरह मिले हुए हैं, फिर भी वे भिन्न हैं, तो फिर प्रत्यक्ष में दिखने वाले पदार्थ, वस्तुएँ व व्यक्ति हमारे अपने कैसे हो सकते हैं ?

जानने योग्य, देखने योग्य कोई वस्तु है तो मात्र अपनी आत्मा ही है। इसे शब्दों से नहीं समझाया जा सकता, इसे वाणी से नहीं बताया जा सकता। यह मानने की, अनुभव की वस्तु है।

जब आत्मा से मोह का पर्दा हटता है, तब उसे आत्म-स्वरूप की पहचान होती है। तभी देह से भिन्न आत्मा में आत्म-बुद्धि पैदा होती है। आत्मा में आत्म-बुद्धि होने पर अन्तरात्म-दशा प्रगट होती है। अन्तरात्म दशा प्राप्त होने पर ही देह-भिन्न आत्मा का बोध होता है।

छूटे-देहाध्यास तो, नहीं करता तू कर्म।  
नहीं भोक्ता तू तेहनो, ए ज धर्म नो मर्म।।  
ए ज धर्म थी मोक्ष छे, तू छो मोक्ष स्वरूप।  
अनन्त दर्शन ज्ञान तू, अव्याबाध स्वरूप।।  
शुद्ध-बुद्ध चैतन्य घन, स्वयं ज्योति सुख धाम।  
बीजुं कहिए केटलूं, कर विचार तो पाम।।

इस संसार में वीतराग जिनेश्वर परमात्मा ही हमें सच्चे सुख की राह बताते हैं। उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही हमें शांति व प्रसन्नता ( सुख ) दे सकता है। शाश्वत पद प्राप्त करा सकता है। परन्तु दुःख इस बात का है कि अज्ञान व मोह के नशे में मस्त बनी हमारी आत्मा को सत्य-धर्म के प्रति प्रेम ही पैदा नहीं होता। जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग ही आत्मा को जिन बनाता है, पूर्ण बनाता है। परन्तु मोह की मदिरा का पान करने वाली आत्मा को यह मार्ग रुचिकर कैसे लगे? उसे तो आनन्द आता है, स्त्रियों के भोग सुखों में। रेडियों, टी.वी., वी.सी.आर के मधुर संगीत में। उसे आनन्द आता है, रसना के मधुर, नाना-विध, सुस्वादु भोजन में। यहीं तो मोह की विडम्बना है। आत्मा क्षणिक तुच्छ सुख में आसक्त बनकर अपना संसार बढ़ाती जाती है। कितना भयंकर है संसार, कितने भयंकर हैं, ये क्षणिक व तुच्छ काम-भोग। इस संसार के सुखों के नग्न रूप को यदि हम अच्छी तरह से समझ लें तो फिर हमारे दिल में उन सुखों के प्रति विरक्ति के भाव जगने लगते हैं। यहीं विरक्ति हमारे मन में वैराग्य-भावों को पैदा करती है।

दुःख में समता धारण करने से, आत्मा दुःख के भार से हल्की बन जाती है और नवीन कर्मों के बंध से बच जाती है। दुःख मुक्ति का मार्ग ज्ञानी भगवन्तों ने यहीं बताया-

सुख में ममता न करें।

सुख का भोग अनासक्त भावों से करें।

दुःख का भोग समता से करें।

अनुकूलता मिलने पर प्रसन्न होना राग है।

प्रतिकूलना मिलने पर नाराज होना द्वेष है।

राग व द्वेष से मुक्त होना ही मुक्ति का उपाय है।

इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं। एक इच्छा पूर्ण होते ही दूसरी नई इच्छा जन्म ले लेती है। उन इच्छाओं की तृप्ति के लिये, मनुष्य सतत् प्रयत्नशील बना रहता है। परन्तु जीवन के अमूल्य क्षण बीते जा रहे हैं, उस ओर इस जीव का लेश-मात्र भी ध्यान नहीं है। इस संसार में हर वस्तु का मिलना सुलभ है, पर मनुष्य जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ है। करोड़ों-अरबों-खरबों वर्षों तक जीने वाले देवता जो पुण्यबन्ध व निर्जरा नहीं कर सकते वह पुण्य बन्ध व निर्जरा मनुष्य अपने छोटे से जीवन में आसानी से कर सकते हैं। विरति धर्म का पालन देवताओं के लिये असंभव है। परन्तु मनुष्य चाहें तो सुगम है। दुःख इस बात का है कि अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जीवन मिल जाने पर भी हम अपने जीवन को विकथा-प्रमाद आदि में व्यर्थ गंवा देते हैं। अव्यवहार राशि में, हमारा सारा समय प्रमाद में ही व्यतीत हुआ। व्यवहार राशि में भी असंख्य वर्ष का समय प्रमाद में गया। पचेंन्द्रिय अवस्था में भी अधिकांश काल मोह की नींद में व्यतीत हुआ। देवलोक में सुख की बहुलता होने से सारा समय प्रायः राग-रंग में व्यतीत हुआ और नरक में दुःख की बहुलता से द्वेष में समय व्यतीत हुआ। तिर्यच गति में भूख, प्यास, अज्ञानता व पराधीनता में समय व्यतीत हुआ, सन्मार्ग कैसे मिले? मात्र मनुष्य जीवन में ही हम बोध प्राप्त कर सकते हैं। अतः इस जीवन में हम अनित्य आदि भावनों का चिन्तन-मनन व अनुप्रेक्षण कर तथा विरति धर्म का पालन कर अपने जीवन को पवित्र बना शाश्वत सुखों को प्राप्त कर सकते हैं। अतः हे आत्मन्! जीवन में जब-जब दुःख आये, आपत्ति आये, कष्ट आये, तब महापुरुषों की समता व सहनशीलता का विचार करोगे तो तुम्हारे जीवन में अवश्य ही समता व सहनशीलता प्रगट होगी। सभी दुःखों से मुक्ति मिलेगी। प्रभु महावीर ने कहा- अनिच्छा से दुःख सहने से अकाम निर्जरा होती है। इच्छापूर्वक समता से दुःखों को सहने से सकाम निर्जरा होती है। अपने कर्मों के उदय से जब दुःख आ ही गया है तो हमें उसे समता से सहने का अभ्यास करना चाहिये।

## सच्चा जैन उसे ही कहना.....

सच्चा जैन उसे ही कहना, जो जीव दया प्रतिपालक है।  
निर्लोभी और कपट रहित जो, राग-द्वेष नहीं रखता है।  
मन-वचन काया से निर्मल, तृष्णा को जो जीतता है।।

हिंसा, झूठ और चोरी छोड़ें, परनारी नहीं देखता है।  
पर द्रव्य को तृण सम मानें, विषय शक्ति न रखता है।।

समभावी और आत्मज्ञानी, पर निन्दा का त्यागी है।  
माया, मोह, शत्रु को जीतकर, श्रद्धा हृदय में धरता है।।

अनुपम धैर्य, वाणी गम्भीर, दूर मान किया जिसने हैं।  
अरिहंत प्रतिभा प्रेम से पूजत, जीवन धन्य उसी का है।।

## विचारणीय बिन्दु

- वर्तमान शिक्षा में विनय की उपेक्षा अहं का पोषण होता है और राग-द्वेष बढ़ता है, क्योंकि उसमें आत्म तत्त्व गौण होता है।
- क्रोध में दिया गया समाधान सही होते हुए भी माननीय नहीं होता।
- धर्म वह है जो दायरे दिल को भी दरिया बना देता है।
- तूं और परमात्मा दो नहीं एक हैं।
- जब तक अहंकार है, तब तक भक्ति नहीं हो सकती।
- सबसे शानदार विजय है अपने आप पर विजय प्राप्त करना और सबसे शर्मनाक हार है अपने से हार जाना।
- जिसके रोम-रोम में जिन आज़ा समाई हो, जिसकी नसों में प्रभु आज़ा का खून बहता हो, वहाँ सफलता के द्वार खुल जाते हैं।
- सुसंस्कार वह मुहर है जो जीवन के सिक्के को बहुमूल्य बना देती है।
- संस्कारों को संवारने में माँ-बाप की अहं भूमिका होती है।
- धर्म मंदिर तक पहुँचने के लिये श्रद्धा सीढ़ी है।
- संशय में डोलता मन शाश्वत सत्य को नहीं पा सकता।
- 'मैं और मेरा' इन दो से हमारा मन मुक्ति पा लें तो आज भी मोक्ष संभव है।
- अज्ञानी शरीर को अपना मानता है। ज्ञानी शरीर को साधन और आत्मा को अपनी मानता है।
- गुणानुरागी ही अपने दोषों का त्याग सरलता से कर, आत्म-विकास में आगे बढ़ सकता है।
- आत्मा जब परमात्मा के स्वरूप में निमग्न हो जाती है, तब वह स्वयं परमात्मा बन जाती है।
- जब तक अहंकार है, तब तक भक्ति नहीं हो सकती।
- हम उपदेश सुनते हैं मन भर, देते हैं टन-टन भर, किन्तु ग्रहण करते हैं कण भर।
- सेवा आत्मा को परमात्मा से जोड़ने वाली कड़ी है।
- भगवान का स्मरण तन्मय होकर, शान्त चित्त से करना चाहिये।
- सत्संकल्प, मनोबल, दृढ़ निष्ठा तथा लगन से सब कार्य सिद्ध होते हैं।
- चार चीजों का सदा सेवन करना चाहिये- सत्संग, संतोष, दान और दया।
- समझदार व्यक्ति की संगति करो, दुष्ट व नीच से दूर रहों।
- मिट्टी के पुतले हैं, मिट्टी में मिल जायेंगे, जो कर्मयोगी हैं, कर्मों से याद आएं।
- जो धैर्य रखकर दुःख सहन करता है, उसका दुःख जल्दी दूर हो जाता है।
- ज्ञानी कहते हैं कि आप खुद के साथ भी न्याय करें व दूसरों के साथ भी।
- जितना राग-द्वेष, मोह-भाव पतला होता है, उतनी ही हमारी आत्मशक्ति बढ़ती है।
- हम शरीर के लिए तो बहुत कुछ करते हैं, पर आत्मा के लिए कुछ नहीं करते।
- हमारा लक्ष्य मात्र यहीं हो कि हम कर्मों के जाल से जल्दी मुक्त बन जायें।
- खुद को मिटाये बिना कभी खुदा नहीं मिलता।
- प्रतिकूलता में प्रसन्न रहना वीरता का लक्षण है।
- न्यायनीति से अर्जित हक का धन ही शुद्ध होता है।

## अपना घर कैसा हो?

( तर्ज:- ऐसा अपना घर हो..... )

गुण सौरभ से रहे महकता, जहाँ जीवन सुखकर हो ।

कथनी करनी रहे एकसी, नहीं जिसमें अन्तर हो ॥

ऐसा अपना घर हो..... ॥1१॥

विनय विवेक की नींव हो जिसमें, प्रेम प्यार की छत हो,

रहे मधुर व्यवहार सभी से, वचनों में अमृत हो ।

सहनशीलता का हो आंगन, कटुता का न जहर हो ॥

ऐसा अपना घर हो..... ॥12॥

उस घर में मजबूत बने, विश्वास की सब दीवारें,

कठिन घड़ी में बन जायें, सब एक दूजे के सहारे ।

खिड़की हो अनुशासन की तो, विघटन का न असर हो ॥

ऐसा अपना घर हो..... ॥13॥

मर्यादा की चार दिवारी में, सब मर्यादित हो,

सादा जीवन उच्च विचारों से, सब ही प्रमुदित हो ।

बड़े जनों का हो आदर और छोटों पर भी महर हो ॥

ऐसा अपना घर हो..... ॥14॥

सेवा और सहयोग का जिसमें, हो दरवाजा सुन्दर,

चित्र नहीं चारित्र की पूजा, हो जिस घर के अन्दर ।

धर्म के सन्मुख रहें सदा सब, पापों से जहाँ डर हो ॥

ऐसा अपना घर हो..... ॥15॥

स्वच्छ आचरण की हो बहारें, ज्ञान प्रकाश हो पूरा,

मोक्ष लक्ष्य की सीढ़ी हो तो, काम रहे न अधूरा ।

गौतम से प्रभु फरमाते हैं, अब तो शाश्वत घर हो ॥

ऐसा अपना घर हो..... ॥16॥

ॐ शांति, ॐ शांति, ॐ शांति